ओ३म्

ब्रह्मचर्य के साधन

(षष्ठ भाग)

प्राणायाम

लेखक :

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

प्रस्तुति :

दुर्लभ ज्ञान

ब्रह्मचर्य के साधन

(षष्ठ भाग)

प्राणायाम

भूमिका

''प्राणायाम ब्रह्मचारी का प्राण है'' यह सोलह आने सत्य है। प्राणायाम की साधना श्रद्धापूर्वक निरन्तर दीर्घकाल तक अभ्यास किये बिना पूर्णतया सिद्धि नहीं होती और इसकी सिद्धि के बिना ब्रह्मचर्यपालन में सफलता नहीं मिल सकती। यदि कोई व्यक्ति प्राणायाम की साधना किये बिना ब्रह्मचर्य पालन में सफलता प्राप्त करना चाहता है तो वह इस प्रकार का दुस्साहस है कि जैसे कोई बूंदों को पकड़कर आकाश में चढ़ना चाहे। अत: ''**प्राणायाम: परन्तप:**'' अर्थात् प्राणायाम सर्वश्रेष्ठ तप है, यह रहस्यपूर्णवाक्य लिखकर मनु जी ने हमारी आंखें खोलदीं, क्योंकि तप ब्रह्मचारी का भूषण है। इसलिये महर्षि देव दयानन्द ने दया करके हमें यह चेतावनी दी कि ''चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए।'' इसलिए प्रत्येक बालक को अपने कल्याणार्थ अनिवार्यरूप से ब्रह्मचर्य की साधना के लिये तप करना ही होगा। इसके बिना अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना का सर्वथा असम्भव है और शरीर सुखाना वा भूखे मरने का नाम तप नहीं है किन्तु धर्मकार्य में जो कष्ट आयें उनको सहते हुए निरन्तर धर्माचरण करना ही तप है। यह तप तो सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति के लिए आचरण में आनेवाला तप है किन्तु जिसे सर्वश्रेष्ठ मानव बनना है उसे सर्वश्रेष्ठ तप प्राणायाम की साधना करनी ही होगी। इसलिये सभी आश्रमवासियों के लिए प्राणायाम के अभ्यास के लिये ऋषियों ने आदेश दिया है किन्तु सर्व आश्रमों के आधार ब्रह्मचर्याश्रम में सफलता पाने के लिए प्राणायामरूपी तप की भट्टी में तपे बिना कल्याण वा सफलता नहीं।

प्राण और ब्रह्मचारी का परस्पर एक महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। इस पर छान्दोग्य उपनिषद् के आधार पर महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं ''ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है, कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। कनिष्ठ ब्रह्मचारी के लिये यह सत्कर्त्तव्य है कि २४ वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर वेदादि विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करे और विवाह करके भी लम्पटता न

करे तो उसके शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभ गुणों के वास करानेवाले होते हैं और ब्रह्मचारी का शरीर और आत्मा आरोग्य और बलवान् होता है।'' इसका फल यह लिखा है कि:—

''वसु ब्रह्मचारी की आयु ७० वा ८० वर्ष तक रहेगी। मध्यम ब्रह्मचर्य यह है जो मनुष्य ४४ वर्ष ब्रह्मचारी रहकर वेदाभ्यास करता है उसके प्राण इन्द्रियां, अन्त:करण और आत्मा बलयुक्त होके सब दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे होते हैं। जो ब्रह्मचारी प्रथम वय में तपश्चर्या करता है उसके ये रुद्ररूप प्राणयुक्त यह मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा, उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्यन्त होता है। उत्तम ब्रह्मचारी के प्राण अनुकूल होकर सकल विद्याओं को ग्रहण करता है। जो आचार्य और माता पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय में तपस्वी बनाकर विद्या और गुण ग्रहण का उपदेश करते हैं वे सन्तान आप ही आप तीसरे उत्तम अखण्डित ब्रह्मचर्य को पूर्ण करते हैं उनको पूर्ण अर्थात् ४०० वर्ष पर्यन्त की आयु प्राप्त होती है और जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर लोप नहीं करते वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं''।

उपरिलिखित लेख में आदर्श ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मचारी को तपस्या करने के लिये आदेश दिया है और तीनों प्रकार के ब्रह्मचारियों को ब्रह्मचर्यपालन से जिन फलों की प्राप्ति होती है उनका भी स्पष्ट उल्लेख किया है। इन सब में एक बात ध्यान देने योग्य है कि ''प्रथम वसु ब्रह्मचारी के शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभगुणों के वसानेवाले होते हैं और उसका शरीर और आत्मा नीरोग वा बलवान् होता है। यह वसु ब्रह्मचारी बसने योग्य अर्थात् सच्चा वैश्य बनता है। दूसरे रुद्र ब्रह्मचारी के प्राण, इन्द्रियां, अन्त:करण और आत्मा बलयुक्त होते हैं और वह रुद्ररूप प्राणों से युक्त होकर दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों का पालन करने की शक्ति प्राप्त करता है अर्थात् सच्चा श्रत्रिय बनता है। तीसरा उत्तम ब्रह्मचारी ४८ वर्ष तक अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसके प्राण उसके अनुकूल होजाते हैं और वह सब विद्याओं का भण्डार बन जाता है और उसको पूर्ण अर्थात् ४०० वर्ष पर्यन्त की आयु प्राप्त होती है और ऐसा अखण्ड ब्रह्मचारी यदि ब्रह्मचर्य का लोप नहीं करता तो वह अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति करता है अर्थात् पुरुषार्थचतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये जीवन के चारों फल उसको प्राप्त होते हैं। जब तक मनुष्य अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके पूर्ण विद्वान् नहीं होता तब तक उसके प्राण अनुकूल नहीं होते और बिना प्राण अनुकूल हुए पूर्ण आयु

जिसकी अवधि ४०० वर्ष बताई है, प्राप्त नहीं हो सकती और ऐसे देव लोग ही मृत्यु को जीतकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं। "**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्**" देवता लोग मृत्यु को बिना ब्रह्मचर्य और तप के नहीं जीत सकते और यह इन्द्र अर्थात् आत्मा अपनी इन्द्रियों को निश्चय से इहलौकिक सुख और पारलौकिक आनन्द मोक्ष तभी प्रदान कर सकता है जब वह निश्चय से सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करता है। "**देवा अमृतमानशाना:**" देव लोग अमृत का भोग अर्थात् अमरपद की प्राप्ति करते हैं। यह वेद की शिक्षा यही सिद्ध करती है कि देवलोक में जाने के लिये देव बने बिना निर्वाह नहीं। वहां देवों को ही प्रवेश मिलता है और देवता बनने से पूर्व तो सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ऋषि पद की प्राप्ति करनी होगी। "**चतुर्वेदादृषिः, अत ऊर्ध्वं देवः**" चारों वेदों को ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सांगोपांग पढ़ने से ऋषि पद की प्राप्ति होगी। ऋषियों से ऊपर देवों का स्थान है और एक-एक वेद के पढ़ने के लिये १२-१२ वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। फिर जाकर ऋषिपद मिलता है और देवपद तो इससे भी ऊँचा है अर्थात् जो सारी आयु अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए घोर तपश्चर्या करता है वही देव बनकर मृत्यु को जीत मोक्ष को प्राप्त होता है। ऐसे आप्त पुरुष देव दयानन्द थे। इसलिये प्राणों के वसुरूप, रुद्ररूप और आदित्यरूप को प्राप्त करने के लिये तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य का उपदेश किया है।

ऋषि दयानन्द ने सर्वोत्तम विवाह का समय ४८वें वर्ष में माना है क्योंकि इस आयु में सब सांगोपांग शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होके पूर्णता को प्राप्त होते हैं। "जैसे पुरुष का सर्वोत्तम विवाह का समय ४८ वां वर्ष है इसी प्रकार स्त्री का २४ वां वर्ष माना है। यह भी लिखा है कि इस समय के पीछे जो धातु बढ़ता है वह शरीर में नहीं रहता किन्तु स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाता है अत: ४८वें वर्ष से आगे पुरुष और २४वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य नहीं रखना चाहिये।" इस स्थल को पढ़कर अनेक बार ब्रह्मचर्यप्रेमियों को सन्देह होता है कि जब २४वें वर्ष से आगे स्त्री और ४८वें वर्ष से आगे पुरुष के शरीर में जो वीर्यादि धातु बढ़ते हैं वे शरीर में ठहरते ही नहीं और स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाते हैं तो ब्रह्मचारी रहने से क्या लाभ है? इस विषय में कई बार ब्रह्मचर्य-प्रेमियों ने मिलकर तथा पत्र द्वारा शंकायें की हैं, महर्षि दयानन्द के यथार्थ तात्पर्य को समझे बिना भ्रम होजाता है। उपरोक्त बात सामान्य व्यक्तियों के विषय में लिखी है किन्तु

जो सारी आयु ब्रह्मचारी रहना चाहें उनके लिए यह नियम नहीं है। यह नियम तो विवाह करनेवाले पुरुष और स्त्रियों का है "किन्तु जो विवाह करना ही न चाहें वे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों तो भले ही रहें परन्तु यह काम पूर्ण विद्यावाले, जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन कार्य है कि जो काम के वेग को थाम के इन्द्रियों को अपने वश में रखना।" महर्षि दयानन्द जी की महाराज की उत्कट इच्छा थी कि इस प्रकार के सारी आयु ब्रह्मचारी रहनेवाले स्त्री और पुरुष उनके समान सहस्रों हों। उन्होंने पूना में व्याख्यान देते हुए इस इच्छा को इस प्रकार प्रकट किया है—

"आर्य धर्म की उन्नति के लिये मुझ जैसे बहुत से उपदेशक आपके देश में होने चाहियें। ऐसा काम अकेला आदमी भली प्रकार नहीं कर सकता, फिर भी यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार जो कुछ दीक्षा ली है उसे चलाऊँगा"

देव दयानन्द की कितनी दृढ़ धारणा थी वे अपनी इसी इच्छा को पुनः सत्यार्थप्रकाश में इन शब्दों में प्रकट करते हैं "जिस पुरुष वा स्त्री की विद्या, धर्म वृद्धि और संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे जैसे पञ्चशिखादि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियां हुई थीं।" उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि देव दयानन्द देशोपकार के लिये अपने समान सहस्रों नैष्ठिक (आजीवन) ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ बनाना चाहते थे, ऐसी अवस्था में यदि ४८वें वर्ष के पश्चात् शरीर में वीर्यादि धातुओं को सुरक्षित न रखा जा सकता हो तो वे स्वयं क्यों ब्रह्मचारी रहते और अपने समान "**ब्रह्मचर्णेण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते**" इस वेद मन्त्र के अनुसार ब्रह्मचारियों की क्यों कामना करते। बात यथार्थ में यह है कि यह कार्य सर्वश्रेष्ठ है किन्तु बड़ा कठिन भी है जैसे ऋषिवर ने लिखा है किन्तु पूर्ण विद्वान् और पूर्ण योगी का है।

योग के आठ अंग हैं उन आठों में से एक अंग प्राणायाम है जिसको परम तप कहा है और बिना प्राणायामादि की साधना के पूर्ण योगी तो क्या साधारण ब्रह्मचारी भी नहीं बन सकता। इसलिए प्राणायाम ब्रह्मचारी का प्राण है। सत्यार्थप्रकाश में एक शंका की है कि "जो ब्रह्मचर्य से संन्यास लेवेगा उसका निर्वाह कठिनता से होसकेगा और काम का रोकना भी अतिकठिन है इसलिये गृहाश्रम, वानप्रस्थ होकर जब वृद्ध होजावे तभी संन्यास लेना अच्छा है।" ऋषिवर इसका उत्तर देते

है—"जो निर्वाह न कर सके, इन्द्रियों को न रोक सके वह ब्रह्मचर्य से संन्यास न लेवे परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे? जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्य संरक्षण के गुण जाने हैं वह विषयासक्त कभी नहीं होता है। उसका वीर्य विचाराग्नि का इन्धनवत् है अर्थात् उसी में व्यय होजाता है।" इस वाक्य ने पूर्वोक्त शंका का पूर्णतया समाधान कर दिया है। जो व्यक्ति प्राणायामादि की साधना करता है उसका वीर्य स्वप्न और प्रस्वेदादि के द्वारा बाहर नहीं निकलता, वह ऊर्ध्वरेता बन जाता है अर्थात् उसका वीर्य प्राणायाम के द्वारा उसके मस्तिष्क में पहुँच जाता है और वहां विचाराग्नि का इंधन बनकर उसमें व्यय होता है और ब्रह्मचारी के मस्तिष्क में ज्ञान की ज्योति जलाता है। वीर्य का एक बिन्दु भी उसके शरीर से बाहर नहीं निकलता। जैसे दीपक का तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढ़ता रहता है और सबको प्रकाशित करता है ऐसे ही आदित्य ब्रह्मचारी प्राणायाम के द्वारा इस वीर्य को मस्तिष्क में पहुँचाकर, सब विद्याओं से परिपूरित होकर सूर्य के समान संसार को देदीप्यमान करता है। जिस प्रकार इस पवित्र आर्यावर्त में "**अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसां बभूवुः**" ८८ हजार ऊर्ध्वरेता अखण्ड ब्रह्मचारी ऋषि हुए हैं जिन्होंने इस ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही सारे विश्व में वेद के पवित्र ज्ञान का प्रकाश किया और प्राणायामादि अष्टांग योग के द्वारा पूर्ण योगी बनकर वे ऊर्ध्वरेता पदवी को प्राप्त हुए।

इसलिये ब्रह्मचारी के प्राण प्राणायाम को अपनाकर हमारे देश के बालक बालिकायें सच्चे ब्रह्मचारी बनने में सफल हों इसी भावना से ब्रह्मचारी का प्राण "प्राणायाम" यह छोटी सी पुस्तिका पाठकों की भेंट है।

—ओ३मानन्द सरस्वती

गुरुकुल झज्जर
शिवरात्रि २०३२ वि०

ब्रह्मचर्य के साधन

[षष्ठ भाग]

प्राणायाम

प्राणायाम का महत्त्व

आज मानव का जीवन नितान्त नीरस एवं क्लेशपूर्ण होचुका है। चारों ओर भय और आशंका के बादल मंडरा रहे हैं। मनुष्यों के जीवन में सुख शांति का कोई भी लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होता। सारा विश्व एक भयंकर अशांति की अग्नि में धू-धू करके जल रहा है। जीवात्मा को सब लौकिक सुखों की प्राप्ति कराने का साधन एवं मोक्ष तक पहुँचाने का सुन्दर वाहन यह शरीर नाना आधि व्याधियों से जर्जरित होचला है। ''**शरीरं व्याधिमन्दिम्**'' की उक्ति स्पष्टरूप से चरितार्थ हो रही है। आर्यसन्तान राजयक्ष्मा (तपेदिक), श्वास-दमा, प्रमेह, अर्श (बवासीर), हृदयरोग, यकृत् रोग, उदर रोग तथा भयंकर वातरोगों से पीड़ित होकर कराह रही है। रोगियों के चीत्कार से वायुमण्डल परिपूर्ण है। वैद्य और डाक्टर छाया के समान मनुष्यों का पीछा कर रहे हैं। किन्तु इन सब प्रयत्नों के बाद भी देश का स्वास्थ्य उन्नति के स्थान पर दिन प्रतिदिन गिरता ही जारहा है। शरीर के समान ही मन की अवस्था है। सब लोग मानसिकरोगों से पीड़ित हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मद, मत्सर आदि भयंकर शत्रु आज खूब बढ़े हुए हैं।

काम का अग्नि मनुष्य को भस्मसात् कर रहा है। मनुष्य अन्धा होकर पतंग के समान इस विषयों के अग्नि में छलांग लगा रहा है। शृंगारपूर्ण जीवन, दूषित शिक्षा तथा अश्लील चलचित्र इस अग्नि में वायु का काम कर रहे हैं। क्रोध भी अपनी प्रचंड अवस्था में है। क्रोधरूपी विष में सिक्त वचन दूसरे मनुष्यों के हृदयों में अपने समान ही प्रतिक्रिया उत्पन्न करके वातावरण को विक्षुब्ध कर रहे हैं। इसलिए द्वेष, ईर्ष्या, विवाद तथा कलह का भयंकर बाजार गर्म है। धन की डाह ने तो मानवजीवन की धारा को ही परिवर्तित कर दिया है। जिस मनुष्य का जन्म आत्म-ज्ञान के लिए हुआ था आज वही इन भौतिक पार्थिव कंकर-पत्थरों के संग्रह में व्यर्थ नष्ट कर रहा है, जीवन का मापदण्ड पैसा कमाना ही बन गया है। चरित्र-संयम-ब्रह्मचर्य-योगाभ्यास का तो कहीं नाम भी नहीं सुनाई पड़ता। इस प्रकार आज मानसिक रोगों को अमृत समझकर स्नेह के साथ बढ़ाया जारहा है।

अय मानवजाति! क्या तू जानती है कि हमारी यह दयनीय दशा क्यों होगई ? जन्म से मृत्युपर्यन्त सुख हमारे लिए मृगमरीचिकामात्र क्यों बन गया ? जीवन में इतनी विषमता-अशान्ति और निराशा कहां से आगई ? सब प्रकार की दिव्य शक्तियों से हमारा सम्बन्धविच्छेद क्यों होगया ? आज हम पशुओं से भी निकृष्ट, दीन हीन, दुःखी एवं निराश्रय क्यों बन गये ? इन सब प्रश्नों का यदि आप एक ही उत्तर चाहते हैं तो मैं कहूँगा कि हम लोगों ने वेद में परमेश्वर द्वारा उपदिष्ट प्राण विद्या को भुला दिया है। इस जीवनदायिनी प्राणविद्या को आदिसृष्टि में वेद द्वारा ऋषि महर्षियों ने प्राप्त करके मानवमात्र तक इसका क्रियात्मक प्रचार किया था। इसी प्राणविद्या, जिसका स्वरूप प्राणायाम है, के कारण **''न ह अस्य प्रजा 'हीयते''** के अनुसार हमारे देश में आयु का माध्यम शत वर्ष था। लोग चार सौ वर्ष तक भी निरोग जीवन धारण करते थे और मृत्युञ्जय की पदवी से विभूषित थे। पिता के सामने पुत्र की मृत्यु नहीं होती थी। विशाल ललाट, बलवान् एवं उभरा हुआ वक्षःस्थल, प्रचण्ड भुजदण्ड तथा कान्ति से युक्त ६ फीट लम्बे सुदृढ़ सुन्दर शरीर को देखकर रोग दूर ही रहते थे। प्राणायाम के प्रभाव से शरीर और मन के पवित्र होने से किसी भी प्रकार की निर्बलता, निराशा, निष्कर्मण्यता को स्थान न था। यह प्राणविद्या भारतवर्ष के प्रत्येक नर-नारी तक पहुँची हुई थी। इसके प्रभाव से सभी लोग चरित्र के धनी होते थे। इसी कारण मनु महाराज ने विश्व के समक्ष घोषणा की थी—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

अर्थात् सारे विश्व के मानव भारतवर्ष के लोगों से चरित्र की शिक्षा ग्रहण करके अपने चरित्र को विशुद्ध बनावें। इसी प्राणायामविद्या के कारण देश में सब प्रकार से सुख शान्ति थी।

प्राणायाम का आदिस्त्रोत वेद

महर्षि दयानन्द जी द्वारा प्रणीत आर्यसमाज के तृतीय नियमानुसार ''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।'' सभी विद्याओं के समान ही इस प्राणविद्या का भी आदिमूल वेद है। वेद में प्राणायाम के मौलिकसिद्धान्तों का स्पष्टरूप में वर्णन आता है। सुविज्ञ पाठकों के ज्ञान के लिए कुछ मन्त्र यहां उद्धृत किये जाते हैं—

द्वाविमौ वातौ वात आसिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु परान्यो वातु यद्रपः।। ऋ० १०/१३६/२

इस मन्त्र का भाष्य आर्यविद्वान् इस प्रकार करते हैं— (इमौ द्वौ) ये दो प्रकार के (वातौ) वायु (वात) बहते हैं। एक वायु (आसिन्धोः) हृदय तक चलता है और दूसरा (आपरावतः) बाहर के वायुमण्डल तक चलता है। (अन्यः) उनमें एक (ते) तेरे लिए (दक्षं) बल (आवातु) अन्दर बहा लावे और (अन्य) दूसरा (यद्रपः) जो दोष बुराई है उसे (परावातु) बाहर वहा लेजावे।

हे मनुष्य! तुझ में दो वायु चल रहे हैं। तुझ में श्वास और प्रश्वास के रूप में प्राण की दो तरह की गति होरही है। श्वास द्वारा बाहर का शुद्धवायु तेरे अन्दर के सिन्धु स्पन्दनशील हृदय तक आता है और प्रश्वास द्वारा अन्दर का दूषित वायु बाहर 'परावत' तक पहुंचता है। हमारे अन्दर हृदय वह 'सिन्धु' स्थान है जहां कि सैकड़ों रुधिरवाहिनी नाड़ीरूप नदियां आकर मिलती हैं और बाहर 'परावत' वह वायुमण्डल नामक स्थान है जोकि वायु का अपार अटूट भण्डार है। एवं ये जो परावत से सिन्धु तक और सिन्धु से परावत तक दो वायु हम में निरन्तर चल रहे हैं ये ही हमारे जीवन के आधार हैं। क्योंकि इनमें से पहिला वायु श्वास, हमारे सिन्धु में बाहर से प्राण और नवजीवन को लाता है और हमारे रुधिर के एक-एक कण को नवबलसंयुक्त कर देता है और दूसरा वायु, हमारे रुधिर में से, सारे शरीर में से, सब मल दोष विकार को बहा लेजाता है और बाहर परावत में फैंक देता है एवं हमारा जीवन बढ़ रहा है, इस प्रकार हमारे जीवन की वृद्धि होती है। हम नित्य अधिक-अधिक बलवान् और नीरोग होते जारहे हैं। पर हे मनुष्य! यह द्विविध प्राणक्रिया केवल तेरे भौतिक जीवन का सिद्धान्त नहीं है किन्तु तेरे मानसिक और आत्मिक जीवन का रहस्य भी इसी में है। तू जानता नहीं कि सब महामना महापुरुष अपने श्वास द्वारा केवल शारीरिक शक्ति को नहीं किन्तु उत्साह, धैर्य, बल, सत्य प्रेम आदि सब मानसिक और आत्मिक सद्भावों को अन्दर लेरहे हैं, तथा प्रश्वास द्वारा सब मन्दता, कायरता, अशक्ति, झूठ, घृणा आदि सभी असद्भावों को बाहर निकाल रहे हैं और इसीलिये वे महान् हुये हैं। प्राण के साथ मन ऐसा जुड़ा हुआ है कि तू श्वास के साथ जो सोचेगा वह तुझ में आबसेगा और जिसे प्रश्वास के साथ ध्यान करेगा वह बाहर निकल जावेगा। तनिक अपनी प्रार्थना में तू इस सिद्धान्त का उपयोग करके देख। जिसे बसाना चाहता है उसे श्वास के साथ चित्रित करके देख और जो अशुभ विचार टलता ही नहीं है उसे उसके आने पर बार-बार प्रश्वास के साथ बाहर करके देख तो तुझे निःसंदेह अद्भुत सफलता मिलेगी। एवं अपने व्यायाम प्राणायाम और प्रार्थना में तू इस जगत् व्यापक

जीवनसिद्धान्त का सदा उपयोग कर। तू देख कि अपनी इस द्विविध प्राणक्रिया द्वारा अनन्तशक्ति भण्डार से जुड़ा हुआ है, और इस भण्डार से अपने प्रत्येक श्वास द्वारा यथेच्छ बल पा सकता है, और अपने श्वास द्वारा उस पवित्रकारक महापारावार में अपनी तुच्छ मलिनतायें फैंककर सदा पवित्र होता रह सकता है। अतः हे मनुष्य! तू उठ और अब अपने प्रत्येक श्वास और प्रश्वास के साथ नित्य उन्नत और नवजीवन सम्पन्न होगा। इस प्रकार यह वेद की आज्ञा है।

इसी प्रकार दूसरा मन्त्र भी प्राणायाम के स्वरूप का स्पष्ट चित्रण करता है—

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।

ऋ० १०,१३७, ३

अर्थात् (वात) हे प्राण! (भेषजं आवाहि) मुझ में औषध को बहा लाओ और (वात) हे प्राण! (यद्रपः) मुझ में जो दोष=मल है उसे (वि वाहि) मुझ से बाहर बहा लेजाओ। (त्वं) तुम (हि) निश्चयरूप से (विश्वभेषजः) सर्व औषधरूप हो, (देवानां दूत ईयसे) तुम देवताओं के दूत होकर चल रहे हो।

मन्त्र में प्राण का एक दिव्य देव के रूप में सुन्दर आलंकारिक वर्णन किया है। यथा—हे वायु! तुम सर्व ओषधरूप हो, तुम में सबकी सब दवाइयां मौजूद हैं, मैं तो यूँ ही इन बाहिर की नाना प्रकार की दवाइयों के खाने-पीने के चक्कर में पड़ रहा हूँ। यदि मैं, हे वात! तुम्हारा ठीक तरह सेवन करूं, तुम्हारी शक्ति का उपयोग करूं, तो मुझे कभी किसी दवा कि जरूरत न हो। संसार के ९० प्रतिशत रोगी इसलिए रोगग्रस्त हैं चूंकि वे ठीक तरह श्वास लेना नहीं जानते तथा सर्वोषधमय तुम्हारा लाभ उठाना नहीं जानते। यदि हम ठीक प्रकार श्वास लेवें तो अन्दर आता हुआ श्वास ही हमारा दिव्य औषधपान होवे और बाहर जाता हुआ प्रश्वास हमारे सब रोग-मल निकालनेवाला होता रहे। यह जो कहा जाता है कि देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार हैं वे और कोई नहीं हैं, वे नासत्यौ (नाक से पैदा होनेवाले) अश्विनौ ये श्वास प्रश्वास वा प्राणापान ही हैं जिन्हें इडा पिंगला, चन्द्रप्राण सूर्यप्राण आदि अन्य रूपों में भी देखा जाता है। इस प्राणापान के नियमन द्वारा संसार के सब रोगों की दिव्य और अमोघ चिकित्सा होजाती है। मैं यूं ही बाहर के वैद्यों को खोजता फिरता हूँ। जब कि वास्तविक दिव्य वैद्य मेरे अन्दर ही बैठे हुवे हैं। सब औषध मेरे अन्दर विद्यमान हैं, मैं इन्हें बाहर कहां ढूंढता हूँ?

और हे प्राणो! तुम तो देवदूत हो, हमारे अन्दर देवदूत होकर चल रहे हो, हमारे अन्दर सब देवों के सन्देशों को लाकर सुनाते हुवे सदा चल रहे हो। हम प्राणोपासना से रहित, स्थूलरत लोग बेशक तुम्हारे इन सूक्ष्म देव-संदेशों को न सुनते हों अतएव तुम्हारी दिव्यचिकित्सा से वंचित रहते हों, परन्तु जो तुम्हारे उपासक हैं वे तो अपने प्राण में सूक्ष्मरूप से चलनेवाले सब पृथ्वी, अप, तेज आदि देवों के सन्देशों को सुनते हैं। शरीर की सब हरकतों व चेष्टाओं के प्रेरक और नियामक वात! हे प्राण! शरीर में दोष उत्पन्न होते ही तुम हम में दिव्यप्रेरणायें करते हो, शरीर को विशेष प्रकार से हिलाने-डुलाने वा चेष्टा करने की प्रेरणा तथा विशेष प्रकार के भोजन, पान, आच्छादन की प्रेरणा पैदा करते हो, यदि हम उन्हें सुना करे और उनके अनुसार आचरण कर लिया करें तो हमारे सब रोगों की चिकित्सा होजाया करे या बहुत अवस्थाओं में तो हम रोग के उत्पन्न होने से ही बच जाया करें। पर हम उन्हें सुनते ही नहीं हैं। दूसरी तरफ जो सुननेवाले हैं वे अपनी नासिकाओं में चलनेवाले तुम्हारे 'स्वरों' को भी सुनते हैं, बल्कि उन्हें आधिदैविक संसार के स्वरों से मिलाये रखते हैं अतएव उनका जीवन ऐसा संगीतमय होजाता है कि वे सदा स्वस्थ एवं नीरोग रहते हैं। हे प्राण! हम चाहे तुम दिव्यदूत के सन्देशों को सुनें या न सुनें, पर यह सच है कि तुम हमारे आये हुवे दिव्यचिकित्सक हो। तुम सर्वौषधरूप हो। हे हमारे स्वास्थ्य के लिये सम्पूर्ण देवों के दूत होकर हम में चलनेवाले प्राण! तुम सचमुच सर्वौषधरूप हो।

इस प्रकार वेद में प्राणायाम के महत्त्व का विशद वर्णन है। शारीरिक मानसिक सभी विकारों को दूर करके उनमें शक्ति का संचार करना प्राणायाम का मुख्य कार्य है। जीवन पूर्णतः श्वासक्रिया पर ही अवलम्बित है। प्राणायाम के द्वारा देह में संजीवनशक्ति का संचार होजाता है। मन की प्रसुप्त शक्तियां जागरित हो उठती हैं, शरीर शुद्ध, पवित्र, बलवान्, तेजस्वी तथा कान्तिमान् बन जाता है, शरीर की सब मांसपेशियां सम्पुष्ट होजाती हैं, शरीर में परिभ्रमण करनेवाला रक्त शुद्ध एवं विकाररहित होजाता है। इस प्रकार प्राणायाम सब धातुओं के मलों को दूर करके वीर्य को शुद्ध पवित्र कर ओजरूप में परिणत कर जीवन को सुखमय बना देता है। इसी कारण प्राणों को वेद में पिता, भ्राता, मित्र आदि के रूप में वर्णित किया गया है—सामवेद के उत्तरार्चिक में इस विषय का मन्त्र निम्न प्रकार है—

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि।। साम, उ.प्र.९, सू.११, म.२

मन्त्र का भाव स्पष्ट है कि प्राण ही हमारा पिता, भ्राता और मित्र है। अतः प्राण ही हमें दीर्घजीवन के लिये समर्थ करता है। सामवेद में इस से पहला मन्त्र भी सब रोग दूर करके प्राणायाम को कल्याण करनेवाला बताता है—

वात वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्र न आयूंषि तारिषत्।।

अर्थात्—(वात) हे वायु (नः) हमारे (हृदय में) (शम्भु) कल्याण और शांतिकारक (मयोभु) सुखकारक (भेषजं) आधि व्याधि को शांत करनेहारे औषधि को (आवातु) प्राप्त कराए और (नः) हमें (आयूंषि) समस्त जीवन को (प्रतारिषत्) पार कराए। प्राण शरीर की प्रधान शक्ति है। प्राण के ऊपर वशित्व प्राप्त करने पर मनसहित—ज्ञानेद्रियां, कर्मेन्द्रियां भी मनुष्य के वश में आजाती हैं। अथर्ववेद में प्राणविद्या का विशद वर्णन है। अथर्ववेद के प्राणसूक्त का प्रथम एक मन्त्र प्राण की प्रधानता का स्पष्टरूप से वर्णन करता है—

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्। अथर्व ११-४-१

इस मन्त्र का भाष्य महर्षि दयानन्द जी महाराज सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में निम्न प्रकार से करते हैं—

''जैसे प्राण के वश में सब शरीर और इन्द्रियां होती हैं वैसे परमेश्वर के वश में सब जगत् रहता है''। इस मन्त्र में परमेश्वर का स्वामित्व बताने के लिये प्राण की उपमा दी है। जिससे प्राण की महत्ता स्पष्ट सिद्ध है।

जिस प्रकार अन्य वेदों में प्राण के महत्त्व का वर्णन है उसी प्रकार यजुर्वेद में भी प्राण का विशद वर्णन है। स्थालीपुलाकन्याय से कुछ स्थल यहां उद्धृत किये जाते हैं। प्राणों को पुष्ट और दीर्घ करने के लिये लिखा है—

प्राणस्त आप्यायताम् ।। यजु० ६-१५ अर्थात् तेरा प्राण संवर्धित हो। प्राण की पुष्टि से ही सब शरीर के अंगों की पुष्टि होती है। इस का वर्णन निम्न मन्त्र करता है—

ऐन्द्रः प्राणो अंगे अंगे निदिध्यदैन्द्र उदानो अंगे अंगे निधीत

यजु०६-२६

अर्थात् आत्मा की शक्ति से प्रेरित होकर प्राण प्रत्येक अंग में पहुँचता है। आत्मा की शक्ति से प्रेरित होकर उदान प्रत्येक अंग में पहुंचता है। अतः सबको प्राण की रक्षा करनी चाहिये। इसका संकेत वेद में स्पष्टरूप से किया है।

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि। यजु० १४-८-१७ अर्थात् मेरे प्राण-अपान-व्यान का संरक्षण करो। प्राणों का रक्षण होने से प्राण सारे शरीर का

संरक्षण करते हैं। इसी प्रकार "**प्राणं ते शुन्धामि**" (६-१४) "**प्राणं मे तर्पयत**" (६। ३१) आदि वेद के वचन भी उपरोक्त भाव को व्यक्त करते हैं। यजुर्वेद में प्राण को शरीर का राजा माना है तथा "**राजा मे प्राणः।**" यजु०२०-५ अर्थात् मेरा प्राण राजा है। जिस प्रकार लोक में राजा के श्रेष्ठ होने से सब व्यवस्थाएं ठीक चलती हैं इसी प्रकार प्राण के सबल होने पर मनेन्द्रिय आदि सब शरीर के अवयव उचित कार्य करते हैं। उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट सिद्ध होगया है कि प्राण-विद्या का आदि स्रोत वेद है।

उपनिषदों में प्राण का महत्त्व

उपनिषद् आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं, तथा प्राण भी अध्यात्मक्षेत्र का तत्त्व है। इसी कारण उपनिषदों में प्राण का विशेषरूप से महत्त्व वर्णन किया गया है। उपनिषदों में प्राण को कहीं ब्रह्म, कहीं देव, कहीं वसु, रुद्र, आदित्य, पिता, माता, स्वसा, आचार्य आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। जिससे प्राण की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध होती है। इस विषय में निम्नस्थल विशेष द्रष्टव्य हैं—

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते प्राणेन जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रयन्त्यभि संविशन्ति। तै०उ० ३-३

इस प्रकरण का अभिप्राय स्पष्ट है—प्राण ही ब्रह्म है, क्योंकि प्राण से सब भूत उत्पन्न होते हैं, प्राण से जीवित रहते हैं और अन्त में प्राण में ही जाकर मिल जाते हैं। इसी प्रकार प्राण को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बतानेवाले उपनिषदों के स्थल नीचे देखिये—

१ **कतम एको देव इति? प्राण इति ।। बृ.उ.३-९-९।**
२ **प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ।। छा० ५-१-१- बृ० ६-१-१**
३ **प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितम् । बृ० ५-१४-४**
४ **प्राणो वा अमृतम् । बृ० १-६-३**
५ **प्राणो वै सत्यम् । बृ० २-१-२०**
६ **प्राणो वै यशोबलम् बृ० १-२-६।**

प्राणों की सर्वश्रेष्ठता बताने के लिये प्रश्नोपनिषद् में एक अतिरोचक उपाख्यान है। शरीर में एक बार इन्द्रियों का परस्पर विवाद होने लगा, मन-श्रोत्र-चक्षु-त्वचा रसना आदि सब इन्द्रियां स्वयं को बड़ा और अन्यों को छोटा बताने लगीं। ऐसी अवस्था देख प्राण ने सब को कहा—

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच "मा मोहमापद्यथ। अहमेवैतत् पंचधाऽऽत्मानं

प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि इति। तेऽश्रद्दधाना बभूवुः।३। सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रामत इव, तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते, तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रतिष्ठन्ते। ते प्रीताः प्राणं स्तुवन्ति ।४।

उन विवाद करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ प्राण ने कहा कि तुम मोह अज्ञान को प्राप्त मत होओ। मैं ही अपने को पांच भागों में बाँटकर इस शरीर को धारण करता हूँ। किन्तु प्राण के इस वचन पर उनका विश्वास नहीं हुआ। इस पर अभिमान से प्राण शरीर से बाहरसा जाने लगा। जब वह बाहर निकलने लगा तो अन्य मन आदि इन्द्रिय भी साथ ही निकलने लगे और उसके स्थिर होने पर सब वहां स्थिर होने लगे। तब वे सन्तुष्ट हो प्राण को श्रेष्ठ मानकर उसकी स्तुति करने लगे। इस सारे उपाख्यान का तात्पर्य प्राण की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करना ही है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राण को शरीर के अंगों का रस रूप में स्वीकार किया है जिसमें उसके प्रधानत्व का निश्चय होता है। यथा—

अंगिरसोंऽगानां हि रसः, प्राणो वा अंगानां रसः—तस्मात् यस्मात्कस्माच्चांगात्प्राण उत्क्रमति तदेव तच्छुष्यति। बृह० उप० १-३-१९।

अर्थात् प्राण ही अंगों का रस है। जिस अंग से प्राण चला जाता है वह अंग सूख जाता है।

प्राण का वसु रुद्र आदित्य रूप में वर्णन

प्राणा वाव वसव एते हीदं सर्वं वासयन्ति।१।
प्राणा वाव रुद्राः, एते हीदं सर्वं रोदयन्ति ।।२।।
प्राणा वावादित्याः, एते हीदं सर्वमाददते ।।३।।

(छान्दोग्य ३-१६)

प्राण वसु हैं, क्योंकि ये सबको बसाते हैं, जीवन प्रदान कराते हैं। प्राण रुद्र हैं क्योंकि इनके निकल जाने से मृत्यु होती है, सब रोते हैं। प्राण आदित्य हैं, क्योंकि ये सब विद्याओं को ग्रहण कराते हैं।

हम पहले यह लिख चुके हैं कि वेद में प्राण को माता-पिता भ्राता रूप में वर्णित किया है। उपनिषदों में भी प्राण की उसी प्रकार स्तुति की है—

प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः।
स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः।। छा०उ० ७-१५-१।

अर्थात्—प्राण ही माता (मान्य=हित करनेवाला) है। प्राण ही पिता (पाता-पालक-संरक्षक) है। प्राण ही भ्राता (भरण पोषण करने योग्य) है। प्राण ही स्वसा (उत्तम प्रकार रखनेवाला) है। प्राण ही आचार्य (आत्मिक गुरु) है। प्राण ही

ब्राह्मण (ब्रह्म के पास लेजानेवाला) है। इसी प्रकार अन्य उपनिषदों के भी अनेक स्थल प्राण की स्तुति करते हैं।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक में प्राण का महत्त्व

तिस्र एषणाः पर्येष्टव्या भवन्ति, तद्यथा प्राणैषणा, धनैषणा, परलोकैषणेति। आसां तु खल्वेषणानां प्राणैषणां तावत्पूर्वतरमापद्येत। कस्मात् प्राणपरित्यागे हि सर्वत्यागः।

अर्थात् मनुष्य की तीन इच्छायें करनी योग्य हैं। १-प्राण की कामना। २-धन की कामना। ३-मोक्ष की कामना। इन तीनों में प्राणों के सुरक्षणादि की कामना मुख्य है। क्योंकि प्राणनाश से सर्वनाश होता है। अर्थात् धनैषणा और परलोकैषणा दोनों जीवितावस्था में ही होसकती हैं मरने पर नहीं। अतएव प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। प्राणायाम का अभ्यास करने से मनुष्य दीर्घायु होजाता है।

प्राणायाम से बुद्धि का विकास

प्राणायाम का कार्य जहां शरीर की शक्ति बढ़ाना है वहां मलों का नाश करना भी इसका मुख्य कार्य है। मनुष्य की बुद्धि त्रिगुणात्मक होती है। तमोगुण के प्रभाव से बुद्धि में जड़ता-मलिनता-आलस्य तन्द्रा का बाहुल्य रहता है। सदैव निष्कर्मण्यता का साम्राज्य मन पर बना रहता है। इसी प्रकार जब बुद्धि पर रजोगुण का प्रभाव होता है तब मन में चञ्चलता-राग-द्वेष-ईर्ष्या आदि की अधिकता रहती है। सांसारिक ऐश्वर्य इन्द्रियों के विषय में आसक्ति तथा आडम्बरप्रधान जीवन रहता है। प्राणायाम करने से बुद्धि के तमोगुण आदि मल दूर होकर सत्वगुण की प्रधानता होजाती है। योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि जी लिखते हैं—

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्" योग०२-५२।

प्राणायाम के करने से हमारे मन पर प्रकाश का आवरणस्वरूप जो मल है वह क्षीण होजाता है। जिसके कारण हमारी अविद्या-अज्ञान दुर्बलता आदि सब मानसिक कमजोरी दूर होकर मन, आत्मा सब शक्तियों के भण्डार बन जाते हैं इसी कारण किसी अनुभवी विद्वान् ने लिखा है—

प्राणायामात् पुष्टिर्गात्रस्य बुद्धिस्तेजो यशो बलम्।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्मात्प्राणायाममाचर।।

अर्थात् प्राणायाम करने से मनुष्य का शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। बुद्धि सूक्ष्मग्राहिणी एवं कुशाग्र बन जाती है। मनुष्य के तेज यश और बल की निरन्तर वृद्धि होती है। अतः प्रतिदिन प्राणायाम अवश्य करना चाहिये।

इस युग के सर्वमूर्धन्य योगिराज महर्षि दयानन्द जी इस विषय में योगदर्शन के एक सूत्र का भाष्य करते हुये निम्न प्रकार लिखते हैं—

''योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।

(योग २-२८)

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तरकाल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढता जाता है। (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

इसी प्रकार प्राणायाम करें तो दोनों (प्राणायाम) की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप होजाती है, कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्यवृद्धि की प्राप्ति होकर स्थिर बल पराक्रम जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा। (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

ऐसे ही मनुस्मृति का प्रमाण उद्धृत करते हुये महर्षि प्राणायाम का महत्त्व वर्णन करते हैं—

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ।। ७०।।
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।।७१।।
प्राणायामैर्दहेद् दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानैश्वरान्गुणान् ।।७२।।

(मनु०अ०६)

इस प्रकार ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवित् संन्यासी को उचित है कि ओंकारपूर्वक सप्तव्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम जितनी शक्ति हो उतने करे। परन्तु तीन से तो न्यून प्राणायाम कभी न करे। यही संन्यासी का परम तप है। क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से धातुओं के मल नष्ट होजाते हैं वैसे ही प्राणों के निग्रह से मन आदि इन्द्रियों के दोष भस्मीभूत होते हैं। इसलिए संन्यासी लोग नित्य प्रति प्राणायामों से आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के दोष, धारणाओं से पाप, प्रत्याहार से संगदोष, ध्यान से अनीश्वर के गुणों अर्थात् हर्ष शोक और अविद्या आदि जीव के दोषों को भस्मीभूत करे। (सत्यार्थप्रकाश पंचम समुल्लास)

प्राणायाम से मन की एकाग्रता

हमारे मन में अनेक दिव्य शक्तियां विद्यमान हैं । किन्तु मन की चंचलता के कारण हम उनका उपयोग करने में असमर्थ है। संसार में सब से कठिन कार्य मन को वश में करना ही है। गुरु द्रोणाचार्य की परीक्षा में चिड़िया की आंख में तीर मारकर उत्तीर्ण होनेवाले, मछली की आंख को बाण की नोक से बींधकर द्रौपदी स्वयंवर को जीतनेवाले तथा निद्रा को वश में कर गुडाकेश की पदवी से विभूषित विश्वप्रसिद्ध योद्धा अर्जुन ने भी इस मन की चंचलता को अनुभव करते हुए योगिराज श्रीकृष्ण को सम्बोधित कर कहा था।—

चंचल हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।

अर्थात् हे कृष्ण! यह मन अतिबलवान्, दृढ़ प्रमाथि तथा अतिचंचल है। इसे एकाग्र करना मैं वायु के निरोध के समान अतिदुष्कर समझता हूँ।

यदि हमारा अधिकार मन पर होजावे तो निश्चितरूप से हम अपने अन्तिम लक्ष्य पर पहुँच सकते हैं। इसकी चंचलता को नष्ट कर एकाग्र करने का प्राणायाम मुख्य साधन है। मन और प्राण का अतिनिकट का सम्बन्ध है। मन के निरोध से प्राण का निरोध तथा प्राण के निरोध से मन का निरोध अवश्यम्भावी है। इसीलिये किसी साधक विद्वान् ने लिखा है—

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।।

अर्थात् प्राण के चंचल होने पर मन चंचल तथा प्राण के निरोध से मन भी निरुद्ध हो जाता है। प्राणायाम से योगी स्थिरभाव को प्राप्त होता है, अतः प्राण का अवरोध करना चाहिये।

इसी प्रकार योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि मननिरोध के साधनों का वर्णन करते हुये लिखते हैं—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य । योग० १-३४।।

वायु के बाहर निकालने और विशेषरूप से धारण करने रूप प्राणायाम से मन को साधक स्थिर करे। अर्थात् रेचक और पूरक प्राणायाम करने से मन चंचलता को छोड़ एकाग्र होजाता है।

प्राणायाम का फलनिर्देश करते हुए योगदर्शनकार पुनः लिखते हैं—

धारणासु च योग्यता मनसः । योग० २-५३।।

अर्थात् प्राणायाम करने से मन एकाग्र हो धारणा के लिये समर्थ बन जाता है। सांख्यदर्शन के निर्माता महर्षि कपिल भी प्राणायाम से मन की एकाग्रता को अपने दर्शन में स्वीकार करते हैं—

निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् । सांख्य० ३-३३।।

अर्थात् रेचक पूरक प्राणायामों से मन की वृत्तियों का निरोध होजाता है। इस प्रकार सब ऋषि महर्षि इस विषय में एकमत हैं। साधक महानुभाव स्वयं अनुभव करके लाभ उठावें।

आज शिक्षितसमाज में प्राण अपान के विषय में नितान्त भ्रम फैला हुआ है। लोगों की यह धारणा है कि जो वायु हम बाहर से भीतर शरीर में ग्रहण करते हैं वह प्राण तथा जो वायु बाहर निकलता है वह अपान है। यह भ्रम प्राण अपान को, श्वास प्रश्वास का पर्यायवाची मानकर ही हुआ है। प्राचीनसंस्कृतसाहित्य में प्राण अपान का स्वरूप इसके सर्वथा भिन्न है। महर्षि दयानन्द जी ने भी अपनेग्रथों में प्राचीन मान्यता को प्रामाणिक मानकर जो श्वास बाहर निकलता है उसकी संज्ञा "**प्राण**" तथा जो वायु बाहर से भीतर लिया जाता है उसका नाम "**अपान**" स्वीकार किया है।

कितने ही पुस्तकप्रकाशक महानुभाव महर्षि के मन्तव्य को न समझकर वर्तमानकाल की मिथ्या धारणा के अनुसार सत्यार्थप्रकाश आदि ऋषिग्रन्थों में परिवर्तन करने का अक्षभ्य अपराध कर बैठते हैं। प्राण अपान के विषय में महर्षि का मन्तव्य जानने के लिये उनकेग्रन्थों के उद्धरण यहां देना उपयुक्त होगा।

सत्यार्थप्रकाश में महर्षि वैशेषिकदर्शन के सूत्र का भाष्य करते हुए लिखते हैं—"(प्राण) भीतर से वायु को निकालना, (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना।" (तृतीय समुल्लास)

इसी प्रकार "**प्राणमय कोश**" का विवेचन करते हुये महर्षि अन्य स्थान पर लिखते हैं—"**प्राणमय**" जिसमें प्राण अर्थात् जो वायु भीतर से बाहर "**अपान**" जो बाहर से भीतर जाता— (नवम समु०)

प्राण अपान का स्वरूप बताते हुए महर्षि यजुर्वेद में निम्न मन्त्र का भाष्य करते हुए लिखते हैं—

प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा, चक्षुषे स्वाहा, श्रोत्राय स्वाहा, वाचे स्वाहा, मनसे स्वाहा। यजु० २२-२३।।

पदार्थ-(प्राणाय) य आभ्यन्तराद् बहिर्निःसरति, (अपानाय) यो बहिर्देशादाभ्यन्तरं गच्छति............

आर्यभाषा-(प्राणाय) जो पवन भीतर से बाहर निकलता है..... (अपनाय) जो बाहर से भीतर को जाता है.................।

इसी प्रकार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में अथर्ववेद का मन्त्र उद्धृत करते हुए लिखते हैं—

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च।
प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च।।

(प्राणश्चापानश्च) प्राणायामरीत्या प्राणापानयोः शुद्धिबले कार्ये। शरीराद्बाह्यदेशं यो वायुर्गच्छति स "**प्राण**" बाह्यदेशाच्छरीरं प्रविशति स वायुरपानः"।

(प्राणश्चापानश्च) जो वायु भीतर से बाहर आता है उस को "**प्राण**" और बाहर से भीतर जाता है उसको "**अपान**" कहते हैं। (वेदोक्तधर्मविषय)

प्राणायाम के विषय में अन्य ऋषि महर्षियों का भी यही मन्तव्य है, यथा महर्षि पाणिनि जी अपने वर्णोच्चारणशिक्षा ग्रंथ में लिखते हैं—**नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरुर्ध्वमाक्रामन्नुर आदीनां स्थानानामन्यतमिस्मन् स्थाने प्रयत्नेन विधार्यते।**

महर्षि दयानन्द इस सन्दर्भ का अर्थ आर्यभाषा में इस प्रकार करते हैं—जो ऊपर को श्वास निकलता है उसको प्राण कहते हैं, जो आत्मा के उच्चारण की इच्छा से विचारपूर्वक नाभिदेश से प्रेरणा किया प्राणवायु ऊपर को उठता हुआ कंठ आदि स्थानों में से किसी स्थान में उत्तम यत्न के साथ धारण किया जाता है।

प्राणापान का वर्णन वाचस्पत्य कोश में भी इसी प्रकार लिखा है— **यद्वै पुरुषः प्राणिति मुखनासिकाभ्यां वायुं बहिर्निस्सारयति स प्राणाख्यो वायुर्वायुवृत्तिविशेषः। यदपानित्यपश्यमिति ताभ्यामेव मुखनासिकाभ्यां अन्तराकर्षति सोऽपानख्यो वृत्तिरिति।**

इसी प्रकार अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर प्राणापान का यही स्वरूप वर्णित है।

इति प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीय अध्याय

प्राणायाम का स्वरूप

इस उपस्थित अध्याय में प्राणायाम का स्वरूप एवं शरीर की उन्नति में प्राणायाम किस प्रकार सहायक है इसकी विवेचना करनी है। प्राणयाम योगांगों में चौथा अंग है। योगदर्शन में इसे समाधि की सिद्धि में बहिरंग साधन माना गया है। प्राणयाम का स्वरूप प्रकट करते हुए महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन में लिखते हैं—

''तस्मिन्सति श्वासप्रश्वायोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

(योग २-०९)

(तस्मिन्सति) उस आसन के सिद्ध होजाने पर (श्वासप्रश्वासयोः) श्वास-प्रश्वासों की (गतिविच्छेदः) गति का बन्द होना (प्राणायामः) प्राणायाम है।

जो वायु हम बाहर से भीतर ग्रहण करते हैं उसे श्वास तथा जो भीतर से बाहर छोड़ते हैं उसे प्रश्वास कहते हैं। आसन का सम्यक् प्रकार से अभ्यास करने के पश्चात् इन श्वास-प्रश्वासों की गति को रीतिविशेष के अनुसार रोकने को प्राणायाम कहते हैं।

यहां पर श्वास प्रश्वास की गतिविच्छेद से तात्पर्य यह है कि श्वास को भीतर ले जाकर भीतर ही यथाशक्ति रोकना, तथा प्रश्वास को बाहर ही यथाशक्ति रोकने का यत्न करना। प्राणायाम शब्द (प्राणानामायामः) प्राण+आयाम इन दो शब्दों के संयोग से बना है, प्राण का अर्थ श्वास प्रश्वास तथा आयाम का अर्थ फैलाना या विस्तार करना है। अर्थात् शनैः शनैः अभ्यास द्वारा श्वास प्रश्वास का निग्रह करके उनको रोकने की अवधि बढ़ाना ही प्राणायाम है।

शारीरिकोन्नति का साधन प्राणायाम

''प्राणो वै बलम्'' के अनुसार शरीर का बल बढ़ाने में प्राण मुख्य साधन है। प्राणायाम के अभ्यास से एक दुर्बल एवं निर्वीर्य मनुष्य भी सशक्त तथा तेजस्वी बन सकता है। इतिहास में इसके अनेक प्रमाण उपस्थित हैं, रावण की सभा में अंगद के द्वारा भूमि में पैर जमाकर सब राक्षसों को लज्जित करने में यह प्राणायाम ही कारण था। महर्षि दयानन्द जी ने भी प्राणायाम के ही अभ्यास से अतुल शारीरिक बल का संग्रह किया था। उनके जीवन में अनेक घटनाएं आश्चर्यजनक देखने में आती हैं। मनों भार से लदी हुई, कीचड़ में धंसी हुई, दो बैलों से न निकलने वाली गाड़ी को सहज में ही निकालकर कीचड़ से बाहर कर देना

प्राणायाम द्वारा ही सम्भव था। परस्पर टकराते हुए दो भयंकर सांडों को सींग पकड़कर पीछे धकेल देना। भागती हुई घोड़ा बग्गी को पीछे से पकड़कर रोक देना और सैकड़ों वरिष्ठ पहलवानों की सभा में हाथ को ऊपर करके शक्तिपरीक्षण की चेतावनी देना, कर्णसिंह को हाथ पकड़कर मूर्च्छित कर देना, अपनी गीली कौपीन से जल निचोड़कर पहलवानों की परीक्षा करना और इसी प्रकार अन्य अनेक अवसरों पर अपने शारीरिक बल से लोगों को आश्चर्यचकित करदेना सब यह प्राणायाम का ही प्रताप था।

वे नित्य प्रति बहुत प्रात:काल ही उठकर ३-४ घण्टे तक प्राणायाम किया करते थे। प्राणायाम के कारण उनका शरीर वज्रसदृश बन चुका था। बड़े-बड़े पहलवान पैर दबाने के ब्याज से पैरों का स्पर्श कर और ऐसी उनके शरीर की अद्‌भुत कठोरता को देख आश्चर्यचकित हो उठते थे।

प्रो० राममूर्ति के लोकप्रसिद्ध बल का रहस्य भी यह प्राणायाम ही था। प्रो० राममूर्ति इस विषय में स्वयं लिखते हैं कि बाल्यावस्था में शरीर पर तपेदिक के लक्षण दिखाई देने लगे थे। किन्तु ब्रह्मचर्य, व्यायाम और प्राणायाम के विशेष अभ्यास से मैं शारीरिक बल में विश्वविजेता बनने में सफल हुआ। इसी प्राणायाम से प्रो० राममूर्ति ने एक ही मुक्के में विदेशी पहलवान को मृत्यु का ग्रास बना दिया था। मोटी-मोटी जंजीरों को कच्चे सूत के धागे के समान वे अनायास ही तोड़ दिया करते थे। सैकड़ों मन के पत्थर को छाती पर रखकर तुड़वाना तथा हाथी को अपनी छाती पर चढ़ाना, दो-दो मोटरों को एक साथ रोककर उन्होंने प्राणायाम की धाक देश-विदेश में सब जगह बैठादी थी। आज देश का स्वास्थ्य पतनोन्मुख है यदि हम चाहते हैं कि हमारे देश में फिर से बलिष्ठ स्त्री पुरुष हों तो हमें अपनी दिनचर्या में प्राणायाम को स्थान देना होगा। बिना प्राणायाम के हम आरोग्य एवं बलप्राप्ति की दिशा में एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते। प्राणायाम से शारीरिक उन्नति किस प्रकार होती है इसे जानने के लिये एक दृष्टि शरीर के अन्दर होनेवाले अनिच्छित कार्यों में से हृदय और फेफड़ों के कार्यों पर डालनी चाहिये।

हृदय

रक्तपरिचालकयन्त्र का नाम हृदय है। यह अंग अनैच्छिक मांस से निर्मित है और दोनों फुफ्फुसों (फेफड़ों) के बीच में वक्ष के भीतर रहता है। जवान मनुष्य का हृदय कोई ४।। इंच लम्बा ६।। इंच चौड़ा और २।। इंच मोटा होता है और

उसका भार ३।। छटांक के लगभग होता है।

किसी मनुष्य का हृदय, आकार, परिमाणादि में उसकी बन्द मुट्ठी से बहुत मिलता है। हृदय का अधिक अंश मध्यरेखा के बाईं ओर अवस्थित है और उसके दाहिनी ओर दाहिना और बाईं ओर बांयां फुफ्फुस रहता है। हृदय मांस से निर्मित एक कोष्ठ है जिसके भीतर रक्त भरा रहता है। इसके अन्दर चार भिन्न-भिन्न कोठरियां होती हैं। जिन्हें (१) दाहिना ग्राहक कोष्ठ, (२) दाहिना क्षेपक कोष्ठ (३) बांयां ग्राहक कोष्ठ (४) बांयां क्षेपक कोष्ठ कहते हैं।

हृदय कभी एक जैसा नहीं रहता। वह कभी सिकुड़ता है और कभी फैलता है। हृदय से दो प्रकार की नाड़ियों का सम्बन्ध होता है जो नाड़ियां शरीर से दूषित रक्त को हृदय में वापस लाती हैं उन्हें शिरायें कहते हैं तथा जिनमें शुद्ध रक्त शरीर के पोषण के लिए हृदय से जाता है उन्हें धमनियां कहते हैं। शरीर से शिराओं द्वारा आए हुए अशुद्ध रक्त को शुद्ध होने के लिये फुफ्फुसों में भेजना तथा फुफ्फुसों से आये हुये शुद्ध रक्त को शरीर में भेजना ही हृदय का कार्य है। हृदय निरन्तर अपने कार्यों में लगा रहता है। मनुष्य के शरीर में कुल रक्त का भार शरीर के भार के बीसवें अंश के लगभग होता है। जिस मनुष्य का भार १ मन २० सेर है उसके शरीर में ३ सेर के लगभग रक्त होता है। हृदय के सिकुड़ने को आंकुचन या संकोच कहते हैं और फैलकर पूर्वदशा को प्राप्त होने को प्रसार। हृदय इस संकोच और प्रसार के द्वारा रक्त को ग्रहण करता है और आगे धकेलता है। एक मिनट में ७२ बार हृदय यह संकोच और प्रसार की क्रिया करता है। इस प्रकार २४ घण्टे में २५२ मन रक्त हृदय से शुद्ध होने के लिए फुफ्फुसों में जाता और इतना ही फुफ्फुसों में शुद्ध होकर हृदय में वापस लोट जाता है। जब हृदय संकोच करता है तो वह रक्त को बड़े वेग से धमनियों में ढ़केलता है और प्रसार से शिराओं द्वारा रक्त को ग्रहण करता है। इस संकोच विकास से एक शब्द उत्पन्न होता है जो लूब-डप, लूब-डप, लूब-डप जैसा सुनाई पड़ता है।

फुफ्फुस या फेफड़े

फुफ्फुस दो होते हैं। वे वक्ष (छाती) में हृदय के दाहिनी और बाईं ओर रहते हैं। दाहिना फुफ्फुस बांयें की अपेक्षा अधिक चौड़ा और भारी होता है। मनुष्य के फुफ्फुसों का भार एक सेर के लगभग होता है। स्त्रियों में इससे थोड़ा कम होता है। फुफ्फुसों में श्वास नासिका द्वारा श्वासप्रणाली में होता हुआ पहुँचता है। फुफ्फुसों

के अनेक छोटे-छोटे अंश होते हैं जो परस्पर सौत्रिकतन्तुओं के द्वारा बन्धे रहते हैं जिन्हें वायुमन्दिर कहा जाता है। फुफ्फुसों का कार्य श्वास-प्रश्वासक्रिया का सम्पादन करना है। ये श्वास लेने पर फैल जाते हैं और प्रश्वास अर्थात् वायु के बाहर निकालने पर अपनी पूर्व अवस्था में होजाते हैं। प्रश्वास के पश्चात् भी फुफ्फुसों में वायु भरा रहता है। साधारणतः स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में १६ से २० तक श्वास लेता है। बचपन में यह संख्या अधिक होती है। रोग में यह संख्या घट जाती है। फुफ्फुस निरन्तर श्वास-प्रश्वास क्रिया से रक्त की शुद्धि करते हैं। यह हम पूर्व लिख चुके हैं कि फुफ्फुस स्पंज की भांति असंख्य छोटे-छोटे वायु मन्दिरों का समुदाय है। लम्बाई चौड़ाई में फैला देने से फेफड़ा १४००० वर्ग फीट स्थान घेरता है। ये वायुमन्दिर वक्षोदर, मध्यस्थ पेशी की चाल से खुलते और बन्द होते रहते हैं। जब ये वायुमन्दिर खुलते हैं, तब एक ओर से तो हृदय से अशुद्ध रक्त और दूसरी ओर से श्वास द्वारा लिया हुआ वायु उन्हें भर देते हैं। रक्त और वायु के मध्य एक अतिपतली झिल्ली होती है। प्रकृति का एक विलक्षण नियम उसमें काम करता है। उस नियम के वशीभूत होने से जिसमें जो वस्तु नहीं होती वह दूसरे से खींच लेता है। शुद्ध वायु से जीवनीयतत्त्व (ओषजन) रक्त में मिल जाते हैं और रक्त में संचित दूषिततत्त्व वायु में मिल जाते हैं। इस प्रकार शुद्ध हुआ रक्त धमनियों द्वारा शरीर में पहुंच जाता है और अशुद्ध हुई वायु प्रश्वास के द्वारा बाहर निकल जाती है। यह कार्य प्रतिक्षण हुआ करता है।

फेफड़े में शुद्ध वायु न पहुँचने का परिणाम

अस्तु, अब विचारणीय बात यह है कि यदि हृदय से रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़े में जावे परन्तु श्वास द्वारा पर्याप्त वायु फेफड़े में न पहुँचे या सब वायु - मन्दिरों में जहां रक्त पहुंच चुका है, शुद्ध वायु न पहुँचे तो उसका परिणाम क्या होगा ?

फेफड़े के मुख्यतया तीन भाग हैं (१) ऊपरीभाग जो प्रायः गर्दन तक है। (२) मध्यभाग जो दोनों और हृदय के इधर-उधर है। (३) निम्नभाग जो वक्षोदर मध्यस्थ पेशी के ऊपर दोनों ओर है। साधारण रीति से जो श्वास लिया जाता है वह पूर्ण श्वास नहीं होता। इसलिए फेफड़े के सब भागों अथवा सब भागों के समस्त वायुमन्दिरों में नहीं पहुंचता तो ऊपरी भाग फेफड़े का रोगी होना प्रारम्भ हो जाता है।

इसी प्रकार फेफड़ों के मध्य और निम्नभागों के रोगी होजाने से खाँसी-श्वास-निमोनिया और जीर्णज्वरादि अनेक रोग जो फेफड़ों से सम्बन्धित है, होने लगते हैं। इस प्रकार पर्याप्त वायु फेफड़ों में न पहुंचने से जहां एक ओर फेफड़ों से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं तो दूसरी ओर रक्त शुद्ध नहीं होने पाता और यह बिना शुद्ध हुआ अशुद्ध रक्त ही हृदय में लौटकर वहां से समस्त शरीर में धमनियों के द्वारा फैल जाता है। बार-बार इस प्रकार दूषित रक्त शरीर में फैलने से मामूली खाज से लेकर कुष्ठरोग तक होजाया करते हैं। शरीर में उत्साह, कान्ति स्फूर्ति का नितान्त अभाव होजाता है। शरीर-मन-मस्तिष्क की सारी शक्तियां मन्द पड़ जाती हैं और मनुष्य भयंकर व्याधियों से पीड़ित हो साक्षात् नरक का अनुभव करता है।

प्राणायाम का महत्त्व

ऊपर हमने हृदय फुफ्फुस आदि शरीर के अंगों का वर्णन इसीलिये किया कि हम श्वाससंस्थान के कार्य और महत्त्व को समझ सकें। हमारी ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि सब अध्यात्मजगत् के तत्त्वों का निर्माण रक्त से होता है। रक्त से ही मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र यावत् धातुएं बनती हैं। रक्त जितना शुद्ध पवित्र होगा उतना ही शरीर के अन्य अंग प्रत्यंगों का निर्माण भी ठीक रूप में होसकेगा। रक्त को शुद्ध तथा जीवनीयतत्त्वों से परिपूर्ण करने का कार्य फुफ्फुसों का है जिसे वह श्वास प्रश्वासों द्वारा सम्पादित करता है। ऐसी अवस्था में प्राणायाम का महत्त्व स्पष्ट होजाता है। हम पूरक प्राणायाम द्वारा विशुद्ध वायु अधिक परिमाण में फुफ्फुसों में पहुँचा सकते हैं जो कि अपने दबाव के कारण फुफ्फुसों में स्थित सूक्ष्म से सूक्ष्म वायुमन्दिरों में पहुँचकर रक्त को शुद्ध कर सके, तथा आभ्यन्तर कुम्भक के द्वारा फेफड़ों की धारणशक्ति को अधिकाधिक बढ़ाकर उसे सबल बना सकते हैं तथा वेगपूर्वक रेचक प्राणायाम करके फुफ्फुसों में स्थित सम्पूर्ण दूषित वायु को बाहर फैंक सकते हैं। इस प्रकार रेचक और पूरक की क्रिया से हम पूर्ण स्वास्थ्यलाभ करके सुखी होसकते हैं।

हमने यह प्राणायाम के स्थूल कार्य का वर्ण न किया जिसे आधुनिक शरीरशास्त्रज्ञ भी स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त प्राणायाम का अतिमहत्त्वपूर्ण कार्य अन्य भी है। जो वायु हम नासिका द्वारा अन्दर लेते या बाहर निकालते हैं केवल उसी का नाम प्राण नहीं है। प्राणवहा नाड़ियां शरीर के प्रत्येक अंग में, यहां तक कि त्वचा के भी प्रत्येक अणु में फैली हुई हैं। इन सब नाड़ियों में प्रतिक्षण प्राणदेव

परिक्रमा करते हैं। प्राणवाहकनाड़ियां रक्तवाहकनाड़ियों के समान सच्छिद्र नहीं हैं अपितु ठोस हैं। इनके आभ्यन्तर तथा बाहर के अवयवों से होता हुआ प्राण इस प्रकार गति करता है जैसे कि ''ब्लाटिंग पेपर'' में पानी। इन्हीं को प्राणसूत्र कहते हैं। गति और ज्ञान इन दोनों प्रकार के कार्यों का सम्पादन प्राण और दैव मन इन सूत्रों द्वारा करते हैं। प्राणायाम करने से इन सभी प्राणसूत्रों को विशेष बल मिलता है। जिससे सम्पूर्ण शरीर में स्फूर्ति और उत्साह का संचार होजाता है।

प्राणायाम करते समय ''**मूलाधार का संकोच**'' नामक क्रिया विशेष ध्यान से करनी होती है। जिसका वर्णन हम अगले अध्यायों में करेंगे। मूलाधार के संकोच से प्राण की ऊर्ध्वगति होकर मस्तिष्क में स्थिर होजाता है जिससे मन अनायास एकाग्र होकर साधक को आनन्दित कर देता है। इस प्रकार प्राणायाम करने से अनेक अपूर्व लाभ होते हैं।

दीर्घायु का साधन प्राणायाम

प्राणियों की आयु को श्वासप्रश्वासों में तो विभक्त नहीं माना जा सकता, किन्तु जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए नियमपूर्वक प्राणायाम करते हैं वे जहां शरीर मन आदि से नीरोग रहते हैं वहां उनकी आयु में भी वृद्धि होजाती है। प्राणायाम के अभ्यास से मनुष्य के फुफ्फुस बलवान् होजाते हैं श्वास प्रश्वास की गति गम्भीर होने से आयु क्षीण नहीं होती। उनके श्वासप्रश्वासों की संख्या बहुत कम होजाती है। इसी कारण ऋषि महर्षि तथा संयमी लोग दीर्घायु होते हैं और उनकी अपेक्षा चरित्रहीन संयमरहित जीवन बितानेवाले लोग अति अल्पायु होते हैं। जिस समय हमारे देश में इस प्राणायामविद्या का प्रचार था तब लोगों की आयु का माध्यम शत वर्ष था। रोग प्राय: नहीं होते थे। मृत्यु बिना इच्छा के नहीं आती थी। महाभारत में भीष्म पितामह कई मास तक मृत्यु से संघर्ष करते रहे और फिर अपनी इच्छानुसार प्राणविसर्जन किये। श्वासों के साथ आयु का घनिष्ठ सम्बन्ध है यह निम्न विवरणतालिका से स्पष्ट होजाता है।

श्वासोपरि प्राणियों की आयु

(प्राणी)	(प्रति मिनट श्वास)	(आयु)
शशक	३८	८ वर्ष
कबूतर	३६	८ वर्ष
बन्दर	३२	२१ वर्ष

कुत्ता	२९	१४ वर्ष
बकरा	२४	१३ वर्ष
बिलाव	२५	१३ वर्ष
घोड़ा	१९	५० वर्ष
मनुष्य	१५	१०० वर्ष
हाथी	१२	१०० वर्ष
सर्प	८	१२० वर्ष
कच्छुआ	५	१५० वर्ष

द्रष्टव्य—यह श्वाससंख्या स्वस्थप्राणियों की है, रोगी और दुर्व्यसनियों की नहीं।

श्वास सदैव नाक से ही लें

वैसे भगवान् की ओर से मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त है कि वह नाक और मुंह दोनों से ही श्वास लेसकता है, किन्तु थोड़ा गम्भीरता से देखने पर यही परिणाम निकलता है कि श्वास लेने के लिए प्रकृति ने नासिका का ही निर्माण किया है। आज अनेक लोग और विशेषकर सभ्य कहे जानेवाले मनुष्यों में मुँह में से श्वास लेने का दुर्व्यसन दिखाई देता है। जिसका परिणाम अतिहानिप्रद रहता है। कारण यह है कि मुख में ऐसा कोई साधन नहीं है जो वायु का संशोधन कर फुप्फुसों के योग्य बना सके। इस कारण दूषित परमाणुओं सहित वायु फेफड़ों में पहुँचकर अनेक संक्रामक रोगों को पैदा कर देता है। मुँह से श्वास लेने का मार्ग छोटा होने से भी वायु अतिशीत अथवा अति उष्ण रूप से ही फेफड़ों में पहुँच जाता है। जिससे सर्दी जुकाम-खांसी आदि अनेक रोग पैदा होजाते हैं। इसके विपरीत नासिका से श्वास लेना अति उपयोगी है। नासिका में भगवान् ने इस प्रकार के साधन संयुक्त किये हैं जो फुप्फुसों को हानि पहुँचानेवाले कीटाणुओं को मध्य में ही रोक लेते हैं। फेफड़े तक पहुँचते-पहुँचते वायु उपयुक्त शीतोष्ण बन जाता है। जो लोग प्राणायाम के मार्ग पर बढ़ना चाहते हैं उन्हें सर्वप्रथम नाक से श्वास लेने का स्वभाव बनाना चाहिये। यह देखने में सामान्य सी बात प्रतीत होती है किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है।

इति द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीय अध्याय

प्राणायाम की तैयारी

प्राणायाम करने से पूर्व उस की तैयारी करना परमावश्यक है। तैयारी से अभिप्राय है—अपने आप को प्राणायाम के योग्य बनाना।

जो साधक स्वयं को प्राणायाम का अधिकारी नहीं बनाते वे अनुभवी गुरुओं के सांनिध्य में रहते हुये भी यथेष्ट उन्नति से वंचित ही रहते हैं। अतः प्राणायाम के पथिकों को निम्नबातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

प्राणायाम के प्रति आस्था

जो लोग प्राणायाम में सफल होना चाहते हैं उनका सर्वप्रथम यह कर्त्तव्य है कि वे अपने मन को प्राणायाम के गुणों से परिचित करादे। जिससे प्राणायाम का विचार आते ही उसके मधुरपरिणामों को विचारकर मन उछल उठे। प्राणायाम करने से पूर्व हमारे मन में यह विचार दृढ़ होना चाहिये कि अब हम एक जीवनदायिनी क्रिया को करने चल रहे हैं जिससे अनेक दिव्यशक्तियां प्राप्त होंगी। शरीर की सब धातुओं के मल भस्मीभूत होजावेंगे। निराशा-दुर्बलता-निष्कर्मण्यता नाम को भी शेष न रहेगी। सब प्रकार के रोगों की इतिश्री होजावेगी। जीवन में उत्साह-पौरुष-साहस-शौर्य-पुरुषार्थ आदि शुभगुणों का उदय होगा। इन्द्रियों की मलिनता एवं चंचलता नष्ट होकर परमपुरुषार्थ की सहयोगिनी बन जावेंगी। बुद्धि कुशाग्र होने से ज्ञान के अथाह सागर में इच्छानुसार विचरण होसकेगा। सब प्रकार की ऋद्धिसिद्धियां चरण चूमेंगी, वीर्य की ऊर्ध्वगति होने से आत्मा वास्तविक रूप से शरीर का राजा बन सकेगा। संकीर्णता दूर होकर **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** का दिव्य सन्देश मन में स्फुरित हो उठेगा। अन्तःकरण के मल विक्षेप आवरण आदि सब दोष दूर होकर जीवन पवित्र एवं सफल होजावेगा। इस प्रकार से अनेक शुभ गुणों का ध्यान करते हुए अति उत्साह-निष्ठा और श्रद्धा के साथ प्राणायाम करने बैठें। मन के अन्दर संशय अथवा विकल्प को थोड़ासा भी अवकाश न दें, इस प्रकार करने से शीघ्र ही यथेष्ट उन्नति सम्भव है।

प्राणायाम में आसनों की उपयोगिता

प्राणायाम तथा आसन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। आसन की सिद्धि के पश्चात् ही साधक प्राणायाम में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है इसलिये योग दर्शन में महर्षि पतञ्जलि प्राणायाम का लक्षण करते हुये लिखते हैं—

''तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

योग० २-४९

अर्थात् आसन के सिद्ध होने पर श्वास प्रश्वास की गति का रोकना प्राणायाम है। सूत्र में **तस्मिन् सति** पद विशेष ध्यान देने के योग्य है। आचार्य इस पद से प्राणायाम के लिये आसन की विशेष उपयोगिता सिद्ध करना चाहते हैं। इसी कारण प्राणायाम से पूर्व यह आसन का विधान किया है। आसन की स्थिरता का सबसे बड़ा लाभ यह है कि साधक को उपासना के विघ्न सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि द्वन्द्व दुःख नहीं पहुँचाते। इसलिये योगसूत्रकार लिखते हैं—

''ततो द्वन्द्वानभिघातः ।। योग० २-४७

अर्थात् जब आसन स्थिर होजाता है तब उपासक को कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता और सरदी-गर्मी अधिक पीड़ा नहीं पहुँचाती।

भगवद्गीता में आसन के विषय में लिखा है—

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।। १।।
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।२।।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्याऽऽसने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।३।।
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।४।।

योगी एकान्त देश में बैठकर मन एकाग्र करे। परमेश्वरचिन्तन से अतिरिक्त अन्य विषयवासनाओं का चिन्तन न करे। निरन्तर एकरस ममतारहित होकर मन को परमेश्वर में लगावे। ।।१।।

ऐसे स्थान में कि जहां की भूमि, जल, वायु शुद्ध हो और जो न तो बहुत ऊंचा और न बहुत नीचा हो, वहां नीचे कुश का आसन उसके ऊपर मृगछाला बिछा उस पर एकाग्र मन से चित्त और इन्द्रियों की वृत्तियों का निरोध करके निश्चल दृढ़ आसनपूर्वक स्वयं बैठकर अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए ध्यानयोग से परमात्मा के चिन्तन में तत्पर होवे।।२-३।।

धड़, रीड़ की हड्डी, शिर और गर्दन को अचल और सीधा धारण किये हुये अपनी नासिका के अग्रभाग में ध्यान ठहराकर, स्थिर होकर बैठे और इधर-उधर किसी दिशा में दृष्टि न करे।। ४।।

प्राणायाम करने के लिये उपयुक्त आसन की जिज्ञासा में हमारा निवेदन है कि जिस आसन में सुखपूर्वक देर तक बैठा जासके वही आसन उचित होता है। योग दर्शन में भी इसी को प्रधानता दी है यथा—"**स्थिरसुखमासनम्**" योग० २-४६ ।।

प्राणायाम का अभ्यास करने के लिये सिद्धासन सर्वश्रेष्ठासन है। सिद्धासन के अभ्यास से अन्य अनेक धातुसम्बन्धी विकार नष्ट होजाते हैं। विधि इस प्रकार है—

समतलभूमि पर बैठकर बायें पैर की एडी अण्डकोष और गुदा इन्द्रिय के बीच में जो स्थान है उस पर लगाओ। यह वह स्थान है जहां से वीर्यवाहकनाड़ियां जाती हैं। दायें पैर की एडी मूत्र इन्द्रिय के ऊपर जहां बाल उगते हैं, लगाओ। दोनों पैरों के गट्टे मिले हुये हों। दोनों घुटने भूमि पर टिके हों। सिर-ग्रीवा मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) समरेखा में (सीधी) रहने चाहियें। ठोडी का झुकाव नीचे को करें वा कण्ठमूल में लगावें। दोनों हाथों को तानकर दोनों घुटनों पर रखें। शरीर सारा खिंचा हुआ होना चाहिये। छाती तनी हुई और आगे को उभरी हुई हो। दृष्टि नासिका के अग्रभाग अथवा भृकुटि में स्थिर करें। प्राणायाम के अभ्यास से पूर्व एक या दो घण्टे तक इस आसन में बैठने का अभ्यास करना चाहिये।

इस आसन के करने से पाचनशक्ति बढ़ती है। अतिसार, श्वास, कास, बहुमूत्र आदि रोग दूर होते हैं। हृदय बलवान् होता है। स्वप्नदोष, प्रमेह आदि धातुसम्बन्धी सब दोष नष्ट होजाते हैं। मन एकाग्र एवं शांत होकर वश में आजाता है। विषयलालसा कम होती है। वीर्य की ऊर्ध्वगति होजाती है। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिये इसका विशेष अभ्यास करना चाहिये। इसके अतिरिक्त शीर्षासन, पद्मासन, सर्वांगासन, हलासन, मयूरासन, पश्चिमोत्तानासन भी प्राणायाम के अभ्यासी के लिये विशेष लाभदायक आसन हैं। इन आसनों के करने से नाड़ियों की शुद्धि होकर प्राणायाम में सफलता मिलती है। अभ्यासी का स्वास्थ्य ठीक रहता है। विशेष जानकारी के लिये मेरी बनाई हुई पुस्तक "**व्यायाम सन्देश**" पढ़ें।

प्राणायाम और बन्धज्ञान

प्राणायाम के अभ्यासी के लिये बन्धों का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। बन्ध तीन होते हैं। (१) मूलबन्ध, (२) उड्डियानबन्ध, (३) जालन्धरबन्ध (कण्ठबन्ध)। इन तीनों को मिलाकर बन्धत्रय कहते हैं। तीनों ही बन्ध प्राणायाम मार्ग में अति लाभप्रद एवं परमोपयोगी हैं। तीनों की विधि यहां पृथक्-पृथक् दी जाती है।

मूलबन्ध

पद्मासन वा सिद्धासन पर बैठकर नाभि से नीचे से उदर के भाग को पीछे सिकोड़ें तथा गुदा इन्द्रिय एवं मूत्र इन्द्रिय का ऊपर को संकोच करें। आप इसे दूसरी प्रकार से भलीभांति समझ सकते हैं। जब लघुशंका करने जाओ और मूत्रत्याग करते समय बीच में ही नाभि के नीचे के भाग को ऊपर की ओर खींचें तो इसके ऊपर संकोच से गुदा इन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय भी एक साथ खिंचेंगी तथा मूत्र निकलना एकदम बन्द होजायेगा तथा जब तक इस मूलाधार को ढीला न छोड़ेंगे तब तक एक बूंद मूत्र भी बाहर नहीं जासकता। इस क्रिया को मूलबन्ध कहते हैं। सब प्रकार के प्राणायामों में इस बन्ध का लगा होना अत्यावश्यक है। यह मूलाधारसंकोच ब्रह्मचारी का तो प्राण ही समझना चाहिये। इसके निरन्तर अभ्यास से सब प्रकार के वीर्यसम्बन्धी विकार दूर होजाते हैं तथा वीर्य की ऊर्ध्वगति होजाती है। जिन लोगों को कुसंग आदि के कारण स्वप्नदोष आदि रोग होगये हैं उनके लिये यह अति उत्तम प्रयोग है। जब आप कुछ मास प्राणायाम का अभ्यास करेंगे तथा मूलबन्ध को लगाने का ठीक अभ्यास होजायेगा तब आप देखेंगे कि स्वप्नों और स्वप्नदोषों की संख्या घटती चली जायेगी। शैनेः शैनेः आप स्वप्नदोष से मुक्त होजायेंगे आपकी विजय होगी।

इसके अतिरिक्त मूलाधार के संकोच से कुण्डलिनी जाग्रत होजाती है तथा सुषुम्णा का मुख खुल जाता है। जिससे कुण्डलिनी इसमें प्रवेश कर जाती है, इस क्रिया से साधक के प्राणों की ऊर्ध्वगति होकर सुषुम्णा द्वारा मस्तिष्क में चले जाते हैं और वहां स्थिर होने से साधक को परमात्मा के दिव्य आनन्द की प्राप्ति होती है। इस विषय में स्वामी आत्मानन्द जी महाराज अपनी **''सन्ध्या अष्टांग योग''** पुस्तक में लिखते हैं—

कुण्डलिनी पेट में कौनसा अंग है और उसके जग जाने पर सुषुम्णा का मुख खुल जाने से क्या तात्पर्य है, इस में मतभेद है। हां इतनी बात अवश्य है कि **''कुण्डलिनी जागरण''** नामक क्रिया के बाद सुषुम्णामार्ग में प्राण बिना आयास के तीव्रता से मस्तिष्क की ओर चला जाता है और इससे प्रथम ऐसा नहीं होता था, बहुत सम्भव है कि सुषुम्णा का नीचे का भाग श्लेष्मा आदि मलों से आक्रान्त रहता हो और वही प्राण की ऊर्ध्वगति का प्रतिबन्धक रहता हो। (मूलबन्धादि) विशेष क्रियाओं द्वारा संशोधन होजाने के बाद प्राणों का बन्ध हट जाता हो....। कुण्डलिनी का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो किन्तु यह तो निश्चित ही है कि

मूलाधार के संकोच से प्राण की ऊर्ध्वगति होकर अध्यात्म आनन्द की प्राप्ति होती है।

उड्डियानबन्ध

पद्मासन या सिद्धासन लगाकर बैठ जावें तथा सम्पूर्ण श्वास को एक बार में ही बाहर निकालदें, उदर को पीछे की ओर खींचे, ऐसा करने से अंतड़िया शरीर के पिछले भाग में लग जाती हैं तब पेट के सब अवयवों में संकोच उत्पन्न होजाता है, इसी को उड्डियानबन्ध कहते हैं। उड्डियान का अर्थ उड़ना भी लगाया जाता है, तो प्राण सुषुम्णानाड़ी से ऊपर उड़ जाता है। इसलिये इस बन्ध का नाम उड्डियान है।

इसका अभ्यास बाह्यकुम्भक के समय किया जाता है। प्राणायाम के समय इस बन्ध को बैठकर तथा व्यायाम के समय खड़ा होके किया जासकता है। इस बन्ध को ६ से ८ मिनट तक करना चाहिये। नौलिक्रिया की प्रारम्भिक क्रिया उड्डियान बन्ध ही है। नौलिक्रिया विशेषतया खड़े होकर की जाती है। लेकिन उड्डियानबन्ध बैठकर भी किया जाता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा में इससे बड़ी सहायता मिलती है। इसका अभ्यास करने से स्वास्थ्य शक्ति तेज और स्फूर्ति मिलती है। इसका अभ्यास नौलिक्रिया के साथ कियाजाता है। यह अभ्यास आमाशय-अंतड़ी आदि के दोषों के लिये रामबाण है। पेट के सभी रोगों से बचने के लिये उड्डियानबन्ध अचूक कवच है। इस क्रिया से उदर के सब अवयवों को यथावश्यक व्यायाम मिल जाता है। इससे बढ़कर इनके लिये और कोई क्रिया नहीं है। सभी प्रकार के व्यायामों में यह क्रिया अनुपम और सबसे अधिक लाभकारी है। पेट और अन्तड़ियों के कठिन रोगों में जहां औषधियाँ व्यर्थ होजाती हैं वहाँ यह क्रिया अतिशीघ्र सफलता प्राप्त कराती है। उदर की चर्बी को कम करने और वायु की निवृत्ति करने में यह अद्वितीय है।

जालन्धरबन्ध

पद्मासन अथवा सिद्धासन से बैठकर आभ्यन्तर प्राणायाम करें, अर्थात् नासिका द्वारा वायु को अन्दर फेफड़ों में भरें और फिर वहीं रोक लेवें, फिर गले को संकुचित करके ठुड्डी को छाती में लगादें, इसी को जलन्धरबन्ध कहते हैं। जब कुम्भक की अवधि पूरी होजावे तब सिर ऊपर उठावें। सिर ग्रीवा और समस्त शरीर सीधा रहे और फिर श्वास को बाहर निकालदें। आभ्यन्तर कुम्भक करते समय वायु ऊपर मस्तिष्क में चला जाता है जिसके कारण सिर में उष्णता, सिर

दर्द, भारीपन आदि अनेक विकार होजाते हैं किन्तु जलन्धरबन्ध को ठीक प्रकार से लगाने पर प्राण ऊपर नहीं जासकता और किसी प्रकार के विकार की सम्भावना नहीं रहती।

मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध तथा उड्डियानबन्ध का पृथक्-पृथक् ऊपर विवेचन किया है। सिद्धासन पर बैठकर प्राणायाम करते समय अभ्यास किया जाता है। इसके साथ ही प्राणायाम करने से विशेष लाभ होता। अतः इनका प्रयोग ध्यान से करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य एवं प्राणायाम

जो लोग प्राणायाम से पूर्ण लाभ प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य पालन के लिये दृढ़प्रतिज्ञ होना चाहिये। संयम के बिना कोई भी साधक इस मार्ग में एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। पुस्तकों तथा व्याख्यानों में प्राणायाम के दिव्य आकर्षक गुणों का श्रवण कर अनेक व्यक्ति ब्रह्मचर्य की उपेक्षा करते हुए प्राणायाम में परिश्रम करते हैं। ''चौबे जी गये थे छब्बे जी बनने, दो पास से देकर दुब्बे जी रह गये'' के अनुसार वे लाभ के स्थान पर अनेक भयंकर रोग क्रय कर लेते हैं। वास्तव में प्राणायाम और ब्रह्मचर्य का अविनाभाव सम्बन्ध है। जिस प्रकार ब्रह्मचर्य के बिना प्राणायाम में सफलता नहीं मिल सकती, उसी प्रकार प्राणायाम के अभाव में ब्रह्मचर्य मार्ग प्रशस्त होना भी संभव नहीं।

प्राणायाम करने से शरीर में एक प्रकार की उष्णता उत्पन्न होती है। जिससे जठराग्नि प्रदीप्त होकर उदरस्थ सभी विकार नष्ट होजाते हैं, तथा शरीर की रस-रक्त-मांस मेदादि वीर्य पर्यन्त सब धातुओं के मल क्षीण होकर शुद्ध पवित्र हो जाते हैं। इसके विपरित जिस असंयमी मनुष्य ने भोग विलास से अपने आपको निर्वीर्य बना लिया है, वह यदि प्राणायाम करता है तो उसके अन्दर उष्णता अधिक बढ़कर शरीर की धातुओं को सुखा देती है। जिससे शरीर दुर्बल रूक्ष एवं निस्तेज होजाता है।

प्राणायाम के अभ्यासी को ब्रह्मचर्यपालन की कितनी आवश्यकता है इसका एक प्रमाण महर्षि दयानन्द जी के जीवन-चरित में मिलता है—एक दिन एक ठाकुरप्रसाद सुनार दानापुर ने स्वामी जी के चरणों में निवेदन किया कि आप मुझे योग (प्राणायाम) की विधि बतलाइये। स्वामी जी ने उत्तर दिया—''एक विवाह और करलो तुम्हारा योग (प्राणायाम) पूर्ण होजायेगा''। ठाकुरप्रसाद ने कुछ समय पूर्व पहली पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह किया था। अतः महर्षि ने उसे इस

प्रकार का उपहासात्मक उत्तर दिया, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राणायाम के अभ्यासी को ब्रह्मचर्य का दृढ़व्रती होना चाहिए।

वैसे तो प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में मनुष्य को अनभ्यास के कारण कठिनता अनुभव होती है, किन्तु प्राणायाम के प्रारम्भिक अभ्यासकाल में साधक पर आलस्य-प्रमाद के तीव्र आक्रमण होते हैं, जिनसे पार होना ब्रह्मचर्यपालन से ही सम्भव है। इसी कारण भगवान् कृष्ण ने गीता में ठीक कहा है—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप्य इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यततः शक्योऽवासुमुपायतः।।

अर्थात्—संयमरहित आत्मावाले को योग प्राणायाम आदि कठिनता से प्राप्त होते हैं ऐसा मेरा निश्चय है। परन्तु यत्न करनेवाले संयमी (ब्रह्मचारी) आत्मा को यत्न से प्राप्त होसकते हैं। अतः जो सज्जन प्राणायाम के मार्ग पर चलना चाहें उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन विशेष निष्ठा से करना चाहिये।

प्राणायाम और भोजन

भोजन हमारे जीवन का मूल आधार है। भोजन की सात्त्विक मीमांसा के बिना हम किसी भी क्षेत्र में उन्नति नहीं कर सकते, कारण यह है कि शरीर-मन-मस्तिष्क तथा अन्य सब साधनभूत शरीर अवयव भोजन ही से निर्मित एवं विकसित होते हैं। सात्त्विक-राजसिक और तामसिक भेद से भोजन तीन भागों में विभक्त होजाता है। प्राणायाम के अभ्यासी को शुद्ध सात्त्विक पौष्टिक तथा स्निग्ध आहार ही सदा सेवन करना चाहिए और वह भी परिमित मात्रा में, नियत समय पर, देश काल एवं शरीर के बलाबल का विचार करते हुए लाभप्रद होता है।

आज हमारा भोजन दूषितप्राय होचुका है। प्रथम तो हमें यही ज्ञान नहीं कि भोजन स्वाद के लिये न होकर शरीररक्षा के निमित्त होता है। इसी कारण हम भोजन का चुनाव करते समय लाभ-हानि की अपेक्षा जिह्वा की लोलुपता को अधिक महत्त्व देते हैं। प्राणायाम के अभ्यासियों के लिये भोजन की चर्चा करते हुये अनुभवी साधक विद्वान् ने लिखा है—

पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं धातुप्रोषणम्।
मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्।।

अर्थात्—प्राणायाम के साधक योगी को शरीरपोषक, मधुर, स्निग्ध, शरीर की सब धातुओं को पुष्ट करनेवाला, रुचिकारक, प्रकृति अनुकूल भोजन करना चाहिये।

इसी प्रकार सात्त्विक भोजन का विधान करते हुये श्रीकृष्णचन्द्र जी गीता में कहते हैं—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।। (१७-८)

आयु, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाले तथा रसीले, चिकने, स्थिर=देर तक ठहरनेवाले एवं हृदय को हितकर भोजन सत्त्वगुणी मनुष्यों को प्रिय होता है। अर्थात् जिस भोजन के सेवन से आयु, बल, वीर्य, आरोग्य आदि शुभ गुणों की वृद्धि हो, जो सरस चिकना—घृतादियुक्त चिरस्थायी और हृदय के लिये हितकर हो वह भोजन सात्त्विक है। कुछ सात्त्विक पदार्थ नीचे दिये जाते हैं।

सात्त्विक पदार्थ

गाय का घी, दूध, गेहूँ, जौ, चावल, मूंग, मोठ, उत्तम फल, पत्तों के शाक, काली तोरई, घीया (लौकी) आदि, मधुर शीतल, स्निग्ध, सरस, शुद्ध, पवित्र और शीघ्र पचनेवाले तथा ओज एवं कान्तिप्रद पदार्थ हैं वे सब सात्त्विक हैं।

आजकल मनुष्यों के भोजन में सात्त्विकता का अभाव तथा राजसिक एवं तामसिक अंश की प्रधानता है। सभी लोग खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, दाहक, नमक, मिर्च-इमली तथा मसालों से युक्त भोजन करते हैं जिस के कारण रजोगुण की वृद्धि होकर प्रतिक्षण तृष्णा और चिन्ता की ज्वाला-मालाओं में मानव अशान्त है। इस प्रकार के मनुष्य प्राणायाम में कभी भी सफल नहीं होसकते अतः प्राणायाम के अभ्यासियों को सात्त्विक भोजन की मात्रा का भी ध्यान रखना आवश्यक है। अधिक मात्रा में खाया हुआ सात्त्विक भोजन दुःखदायक होजाता है। गरिष्ठ और मलबद्ध करनेवाले आहार से भी साधक को दूर रहना चाहिये।

प्राणायाम और नियमित दिनचर्या

प्राणायाम की सफलता के लिये दिनचर्या का नियमित होना भी परम आवश्यक है। साधक का प्रत्येक क्षण निश्चित कार्यक्रमानुसार विभक्त होना चाहिये। प्रातःकाल जागरण से रात्रि के शयन तक नियमितरूप से दिनचर्या अबाधरूप से चलनी चाहिये। इस प्रकार एक क्रम से लम्बेकाल तक अभ्यास करने से मन तथा शरीर के अन्य अवयवों को समयानुसार कार्य करने का अभ्यास बन जाता है। मन सब विकल्पों से रहित अतिशांत रहता है। सायंकाल निश्चित समय पर शयन करने से प्रातः ठीक समय पर निद्रा पूरी होजाती है, एवं थोड़े ही समय में शरीर की सब श्रान्ति दूर होजाती है। शौच आदि मलविसर्जन का समय नियत होने से हमारा अनैच्छिक मांस उचित समय पर मल छोड़ता है। कब्ज आदि रोगों से अनायास ही मुक्ति मिलजाती है। भोजन का समय निश्चित होने से क्षुधा भी ठीक लगती है

और भोजन का परिपाक भी उचितरीति से होता है। शरीर के सब अंगों की व्यवस्था ठीक रहने से प्राणायाम करने में प्रतिदिन मन उत्साहित रहता है। मन स्वतः ही प्राणायाम में लग जाता है। इस प्रकार नियमितदिनचर्या से शीघ्र ही उन्नति होजाती है।

प्राणायाम के अभ्यासियों के लिये कुछ बातें ऊपर लिखी जाचुकी हैं। इसके अतिरिक्त आजकल अनेक लोग हठयोग के आडम्बर को प्रधान मानकर अनेक प्रकार की मुद्रा वस्ति धौति त्राटक आदि क्रियाओं का विधान करते हैं। किन्तु ये सब क्रियाएं प्राणायाम के मार्ग में साधक होने के स्थान में बाधक ही हैं। कितने ही मनुष्यों को मैं जानता हूँ कि जिन्होंने मुद्राओं और वस्ति आदि क्रियाओं से अपने आपको सदा के लिये रोगी बना लिया है। जो साधक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये शुद्ध सात्त्विक आहार करते हैं उन्हें इन अस्वाभाविक साधनों की कोई आवश्यकता ही नहीं। क्योंकि प्राणायाम करने से सब मलों का निराकरण होजाता है। अतः इन बखेड़ों से दूर रहना ही श्रेयस्कर है।

इस विषय में दिव्य योगी महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने पूना के ग्यारहवें व्याख्यान में इस प्रकार विधान किया है—

अब हठयोग का विधान वर्णन किया जाता है। हठयोग में वस्ति उसे कहते हैं कि गुदा के रास्ते से पानी चढ़ाकर सफाई करना। टकटकी लगाकर इस प्रकार देखने को जिसमें पलक भी न झपके, त्राटक कहते हैं। नासिका में सूत्र डालकर मुख से निकालने को नेति कहते हैं। मलमल का चार अँगुल चौड़ा और १६ से लेकर ८० हाथ तक का लम्बा कपड़ा मुख के रास्ते पेट में लेकर फिर बाहर निकालने को धौति कहते हैं। यह बाजीगरी का खेल है, इन सब से कब निवृत्ति पाकर योग प्राप्त कर सकते होंगे? यह हठवाले ही जानें कि इन कामों में बिमारियां पैदा होती हैं।

महर्षि के उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट सिद्ध है कि ये वस्ति आदि हठयोग की क्रियाएं क्रीडामात्र हैं, इनका योग और प्राणायाम से कोई निकट का सम्बन्ध नहीं, इन के करने से साधक योगी न बनकर रोगी तो निश्चित ही बन जाता है। अतः इन से दूर ही रहना चाहिये।

इति तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थ अध्याय

प्राणायामविधि एवं भेद

प्राचीनकाल में भारतवर्ष भौतिक ऐश्वर्य के साथ अध्यात्मविद्या में भी उन्नति के शिखर पर विराजमान था। प्राणायामविद्या यहां मनुष्यमात्र तक फैली हुई थी। प्राणायाम के मर्म को जाननेवाले मनीषी विद्वानों के स्थान-स्थान पर गुरुकुलादि आश्रम बने हुए थे, जिनमें सहस्त्रों की संख्या में ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी लोग प्राणायामादि योगांगों का क्रियात्मक अभ्यास करते थे। संन्यासी महात्मा ग्राम-ग्राम में भ्रमण करके प्राणायाम के गम्भीर रहस्यों का विवेचन निष्कामभाव से मनुष्यमात्र के हितार्थ करते थे। उस समय भारतवर्ष सम्पूर्ण विश्व का गुरु था। प्राणायामविद्या के कारण सभी क्षेत्रों में तेजस्विता का एकछत्र साम्राज्य था। इसी कारण पवित्र आर्यावर्त में सभी स्त्री-पुरुष (आबाल वृद्ध वनिता) श्रद्धापूर्वक प्राणायाम नित्यप्रति करते थे।

शनैः शनैः प्रमाद आलस्य के प्रभाव से तथा सत्कर्मों के ह्रास से वैदिकज्ञान का भानु अस्ताचल को पहुँच गया। जिसके परिणामस्वरूप तत्त्ववेत्ताओं की सन्तान आज प्राणविद्या से नितान्त शून्य है। सामान्य जनता ही नहीं अपितु बड़े-बड़े पंडितंमन्य भी प्राणायामविद्या से कोरे हैं। इसलिए सर्वत्र अन्धपरम्परा चल रही है। लोग प्राणायाम के नाम से भयभीत हैं और इसे केवल योगियों के उपयोग की ही वस्तु मानते हैं। कितने ही पाखण्डी योग के नाम से आडम्बर करके लोगों से धनहरण कर महापातकी बन रहे हैं। चेले चेलियों को बढ़ाकर सम्प्रदाय का रूप दे अतिनिन्दित कार्य कर रहे हैं। ऐसी अवस्था देख ऋषियों के सन्देश को मनुष्यमात्र तक पहुंचाने की भावना से यहां शास्त्रोक्त प्राणायाम की विधि लिखी जा रही है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज इस युग के सर्वमान्य योगिराज एवं आप्तपुरुष हुए हैं। महाभारतकाल से आज तक इन ५ हजार वर्षों में उनके समान कोई योगी नहीं हुआ। आजकल के योगी और महात्मा कहलानेवाले जन तो उनके पैरों की धूल भी नहीं। उन्होंने अपने जीवन में पूर्णरूपेण योगतत्त्वों का साक्षात्कार किया था। उन द्वारा उपदिष्टविधि सर्वथा वेदादिशास्त्रोक्त होने से पाठकों के कल्याणार्थ यहां उद्धृत करता हूँ—

"**प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणास्य।** योग० १-३४

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राण

को बल से बाहर फैंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवें। जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींचे रखे जब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को लेके फिर भी वैसे ही करता जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो और मन में "**ओ३म्**" इसका जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है। एक "**बाह्यविषय**" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा "**आभ्यन्तर**" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोके। तीसरा "**स्तम्भवृत्ति**" अर्थात्, एक ही बार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा "**बाह्याभ्यन्तराक्षेपी**" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाये। ऐसा एक दूसरे के विरुद्ध किया करें। (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

मुख्यरूप से प्राणायाम के चार भेद होते हैं। महर्षि ने ऊपर प्राणायाम की पूर्ण विधि लिखदी है। इसका आधार योगदर्शन के "**बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देश-कालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः**" तथा "**बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः**" (योग २-५० ।५१) ये दो सूत्र हैं। इन दोनों सूत्रों का भाष्य ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासनाविषय में संस्कृत तथा आर्य दोनों भाषाओं में महर्षि ने इस प्रकार किया है—

"यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः। यत्र श्वासपूर्वको गत्यभावः स आभ्यन्तरः। तृतीयः स्तम्भवृत्तिर्यत्रोभयाभावः सकृत् प्रयत्नाद् भवति। यथा तप्ते न्यस्तमुपले जलं सर्वतः संकोचमापद्यते तथा द्वयोर्युगपद् गत्यभाव इति।

बालबुद्धिभिरङ्गुल्यंगुष्ठाभ्यां नासिकाछिद्रमवरुध्य यः प्राणायामः क्रियते स खलु शिष्टैस्त्याज्य एवास्ति। किन्त्वत्र बाह्याभ्यन्तरांगेषु शान्तिशैथिल्ये सम्पाद्य, सर्वांगेषु यथावत् स्थितेषु सत्सु बाह्यदेशं गतं प्राणं तत्रैव यथाशक्ति संसाध्य प्रथमो बाह्याख्यः प्राणायामः कर्तव्यः। तथोपासकैर्यो बाह्याद्देशादन्तः प्रविशति तस्याभ्यन्तर एव यथाशक्ति निरोधः क्रियते। स आभ्यन्तरो द्वितीयः सेवनीयः। एवं बाह्यान्तराभ्यामनुष्ठिताभ्यां द्वाभ्यां कदाचिदुभयोर्युगपत्संरोधो यः क्रियते स स्तम्भवृत्तिस्तृतीयः प्राणायामोऽभ्यसनीयः। योग २-५० ॥

इसी प्रकार अगले सूत्र का भाष्य महर्षि करते हैं—

"यः प्राणायाम उभयाक्षेपी स चतुर्थो गद्यते। तद्यथा यदोदराद् बाह्यदेशं प्रति गन्तुं प्रथमक्षणे प्रवर्तते, तं संलक्ष्य पुनर्बाह्यदेशं प्रत्येव प्राणाः प्रक्षेप्तव्याः, पुनश्च यदा बाह्याद् देशादाभ्यन्तरं प्रथममागच्छेत्तमाभ्यन्तर एव पुनः पुनर्यथाशक्ति गृहीत्वा तत्रैव स्तम्भयेत् स द्वितीयः। एवं द्वयोरेतयोः क्रमेणाभ्यासेन गत्यभावः क्रियते, स चतुर्थः प्राणायामः। यस्तु खलु तृतीयोऽस्ति स नैव बाह्याभ्यन्तराभ्यासापेक्षां करोति; किन्तु यत्र यत्र देशे प्राणो वर्तते तत्र तत्रैव सकृत्स्तम्भनीयः। यथा किमप्यद्भुतं दृष्ट्वा मनुष्यश्चकितो भवति तथैव कार्यमित्यर्थः।" योग०२-५१॥

इसके आगे महर्षि आर्यभाषा में लिखते हैं—

"और यह प्राणायाम चार प्रकार से होता है। एक बाह्यविषय, दूसरा आभ्यन्तर विषय, तीसरा स्तम्भवृत्ति और चौथा जो बाहर भीतर रोकने से होता है। वे चार प्राणायाम इस प्रकार के होते हैं कि जब भीतर से बाहर को श्वास निकले , तब उसको बाहर ही रोकदे, इसको प्रथम प्राणायाम कहते हैं। जब बाहर से श्वास भीतर को आवे, तब उसको जितना रोक सके, उतना भीतर ही रोकदे, इसको दूसरा प्राणायाम कहते हैं। तीसरा स्तम्भवृत्ति है कि न प्राण को बाहर निकाले और न बाहर से भीतर लेजावे, किन्तु जितनी देर सुख से होसके, उसको जहां का तहां, ज्यों का त्यों एकदम रोकदे। और चौथा यह है कि जब श्वास भीतर से बाहर को आवे, तब बाहर ही कुछ-कुछ रोकता रहे, और जब बाहर से भीतर जावे, तब उसको भीतर ही थोड़ा-थोड़ा रोकता रहे, इसको बाह्याभ्यन्तराक्षेपी कहते हैं। और इन चारों का अनुष्ठान इसलिये है कि जिससे चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहे। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासनाविषय)

इसके अतिरिक्त महर्षि ने संस्कारविधि, पञ्चमहायज्ञविधि आदि ग्रन्थों में भी प्राणायामविधि का संकेत किया है। किन्तु प्रधानता से सत्यार्थप्रकाश एवं भाष्यभूमिका में प्राणायाम का निर्देश है। साधक महानुभावों की सुविधा के लिये उपरोक्त चार प्रकार के प्राणायामों को नीचे कुछ विस्तार से लिखा जाता है।

१. बाह्यविषय या बाह्यकुम्भक प्राणायाम

पहले सिद्धासन अथवा पद्मासन से बैठें। सिद्धासन का प्रकार हम पूर्व लिख चुके हैं। प्राणायाम करने से पूर्व बांयां स्वर चलता हो तो ठीक है। जिधर से वायु आता हो उधर मुंह रखो। जैसे अत्यन्त वेग से वमन (कै) होता है और अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे ही प्राण (श्वास) को बल से बाहर फैंकदो। एक ही

बार निरन्तर एक श्वास में सारा वायु बाहर निकल जाय, झटके दे देकर नहीं। प्राणायाम करने से पूर्व मूलबन्ध ठीक प्रकार से लगालें और जब तक प्राणायाम करें उतनी देर निरन्तर मूलबन्ध लगा रहे, बीच में किञ्चित् भी ढीला न होने पावे। पहले हृदय का वायु बल से बाहर निकालो, फिर ऊपर के फेफड़े का श्वास निकालकर खाली करना चाहिये। फिर उदर को खाली करना चाहिये। श्वास इस विधिपूर्वक निकालने में स्वयं हृदय फुफ्फुस और पेट का वायु क्रमशः एक बार ही निकल जाता है। किन्तु यह ध्यान रखो सारा प्राण एक ही श्वास में बाहर निकल जावे। श्वास तोड़ तोड़ कर कभी न निकालो। श्वास को लम्बा करके निरन्तर गति देते हुये एक ही बार बाहर निकालदो। श्वास बाहर निकलने के बाद उड्डियानबन्ध भी लगालो। श्वास को यथाशक्ति बाहर रोकने का यत्न करो। जब घबराहट हो तब उड्डियाबन्ध हटाकर धीरे-धीरे वायु को भीतर लेलो। किन्तु अन्दर नहीं रोको। मूलबन्ध पूर्व के समान ही लगा रहे, यह एक प्राणायाम हुआ। फिर इसी प्रकार इस प्राणायाम की दूसरी आवृत्ति करें। न्यून से न्यून ३ प्राणायाम अवश्य करें। इस प्राणायाम के अभ्यासकाल में अन्दर श्वास नहीं रोकना चाहिये। पहले इसी बाह्यविषय का अभ्यास न्यून से न्यून एक वर्ष तक करना चाहिये। यही प्रथम प्राणायाम है, इसके सिद्ध होने पर ही दूसरा प्राणायाम करना उपयुक्त है। सामान्यतया लोग बाहर तथा भीतर रोकना, दोनों एक साथ आरम्भ कर देते हैं। इसलिये विशेष लाभ तथा उन्नति नहीं होती। एक मास तक तीन ही प्राणायाम करें, फिर शनैः शनैः प्रतिमास संख्या बढ़ाते जाओ। यदि गोदुग्ध घृत वा अन्य पौष्टिक भोजन पर्याप्त खाने को मिले तो दोनों समय अभ्यास करना चाहिये। इस प्राणायाम की संख्या २१ तक बढ़ा सकते हैं। प्राणायाम करते समय हाथ से नासिका पकड़कर श्वास नहीं रोकना चाहिये। मूलाधार का संकोच निरन्तर बना रहे। एक प्राणायाम करने के पश्चात् तीन चार साधारण श्वास लेकर फिर दूसरा प्राणायाम करना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक प्राणायाम की आवृत्ति में यही क्रम रहेगा। प्राणायाम के समय ओ३म् का जप करते रहें।

लाभ—यह प्राणायाम विशेष लाभप्रद है। इसके निरन्तर अभ्यास से सब लोग ऊर्ध्वरेता बनकर ब्रह्मचर्य के दिव्य आनन्द का उपभोग कर सकते हैं। शरीर तथा नाड़ियों की शुद्धि इस प्राणायाम से अतिशीघ्र होती है। शरीर और इन्द्रियों के सब विकार नष्ट होकर तेजस्विता तथा स्थिरता आती है। ब्रह्मचारियों के लिये अमोघ प्रयोग है।

२. आभ्यन्तरकुम्भक या आभ्यन्तरविषय प्राणायाम

यह प्राणायाम बाह्यप्राणायाम के सिद्ध होने पर करना चाहिये। पूर्व प्राणायाम के समान सिद्धासन अथवा पद्मासन से बैठकर मूलबन्ध लगावें। उसके बाद नाक से सहसा श्वास अन्दर भरलें। एक श्वास में ही वायु पूरा भर जाना चाहिये। श्वास भरने के बाद जालन्धरबन्ध लगालें और यथाशक्ति श्वास को अन्दर ही रोक रखें। घबराहट होने पर जालन्धरबन्ध हटाकर श्वास को सहसा बाहर निकालदें। यह एक प्राणायाम हुआ। दो चार सामान्य श्वास लेकर फिर उसी प्रकार पूरक करके कुम्भक करें। प्रथम प्राणायाम के समान शनैः शनैः भोजन और शक्ति अनुसार इस प्राणायाम की संख्या बढ़ानी चाहिये। मूलबन्ध निरन्तर सावधानी पूर्वक लगा रहे। मन को नाभि के नीचे, हृदय, भृकुटि आदि स्थानों में एकाग्र करें। ओ३म् का जप निरन्तर करते रहें। ध्यान के द्वारा प्राण का दबाव फेफड़ों के प्रत्येक अवयव पर डालने का यत्न करें। यह दूसरा प्राणायाम है। इसे पूरक कुम्भक भी कहते हैं।

लाभ— इस प्राणायाम से शरीर की शक्ति अत्यधिक बढ़ती है। शरीर सुन्दर-सुडौल बन जाता है। फेफड़े एवं वक्षस्थल वज्र के समान दृढ़ होजाते हैं। शीत से रक्षा करने में भी यह अतिसहयोगी है। धातु के विकार भी इस प्राणायाम से नष्ट होते हैं। इस के अभ्यास के साथ प्रथम रेचक प्राणायाम भी किया जासकता है।

३-स्तम्भवृत्ति प्राणायाम

यह तीसरा प्राणायाम है। इस में पूर्ववत् आसन में बैठ मूलबन्ध लगाकर न श्वास को बाहर निकालने की आवश्यकता है और न बाहर से अन्दर लेने की। जिस अवस्था में श्वास विद्यमान है उसी अवस्था में उसे रोक दिया जाता है, और रोकने के बाद जालन्धरबन्ध लगा दिया जाता है। जब न रहा जासके तो साधारण रीति से श्वास लेकर वा निकालकर फिर उसे उसी अवस्था में रोकदिया जाता है। शेष सब प्रक्रिया पूर्वोक्त ही है। इस प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास दोनों का निरोध होजाता है। इस के लिये व्यास जी ने बड़ा अनुकूल दृष्टान्त दिया है उन्होंने लिखा है—'जैसे तपे हुये पत्थर पर डाला हुआ जल चारों ओर से हटकर एक स्थान पर संचित होजाता है। इसी प्रकार इस प्राणायाम में श्वास और प्रश्वास दोनों का युगपत् निरोध होजाता है। योगदर्शन के २-५० सूत्र में उपर्युक्त तीनों प्रकार के प्राणायामों के परीक्षण के लिये लिखा है—''**बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकाल-**

संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।'' अर्थात् बाह्य, आभ्यन्तर, स्तम्भवृत्ति इन तीनों ही निरोधों के देश काल और संख्या का परिमापण करना चाहिये। इन के परिमापण की विधि इस प्रकार है—वायुनिरोध के समय प्राण शरीर में कितनी दूर तक फैला, इसका निरीक्षण देश का परिमापण है। प्राण जितनी दूर तक फैलता है शरीर के उतने भाग में चीटियां सी चलती प्रतीत होने लगती हैं, यही प्राण की देश की अपेक्षा से पहचान है। प्राणनिरोध के समय मन में यह प्रबल भावना होनी चाहिए कि प्राण मेरे सम्पूर्ण शरीर में फैलरहा है। कितने समय तक श्वास को हमने अन्दर स्तम्भित किया है यह उसका काल की दृष्टि से परिमापण है और उस प्राणायाम की हमने कितनी आवृत्ति की; अर्थात् कितनी बार वह प्राणायाम किया यह संख्या की दृष्टि से प्राणायाम का माप हुआ।

इसके अतिरिक्त निरोध की दीर्घता और सूक्ष्मता का निरीक्षण भी आवश्यक है। दीर्घता से अभिप्राय है पहले की अपेक्षा देश काल संख्या की दृष्टि से प्राणायाम में कितनी वृद्धि हुई है। देश काल संख्या द्वारा परिदृष्ट निरोध प्राणायाम को अगले दिन ही देश काल संख्या के बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। उसे उसी अवस्था में अभ्यस्त करने के लिये कुछ दिन अवश्य लगाने चाहियें। फिर शनैः शनैः उस प्राणायाम का इतना अभ्यास होजाना चाहिये कि अभ्यासी को पता भी न चले कि मैं प्राणायाम कर रहा हूं। किसी प्रकार के भी श्रम का अनुभव प्राणायाम करते हुये न हो और श्वास के लेने और निकालने की गति अतिसूक्ष्म होजावें इसे ही सूक्ष्मता कहते हैं। जिस प्रकार हमने आभ्यन्तर प्राणायाम के देश-काल संख्या से दीर्घता और सूक्ष्मता के परीक्षण की विधि ऊपर बताई उसी प्रकार बाह्य प्राणायाम का भी परीक्षण किया जासकता है । बाह्य प्राणायाम काल और संख्या का परीक्षण तो पूर्ववत् ही होगा किन्तु देश का परीक्षण शरीर के अन्दर न करके शरीर के बाहर किया जाता है, अर्थात् नासिका से निकलते हुये प्रश्वास का प्रभाव बाहर के प्रदेश पर कहां तक पड़ा इसकी परीक्षा हम नासिका के सम्मुख रूई आदि का हल्का टुकड़ा रखकर कर सकते हैं। यह परीक्षा इसलिये की जाती है कि प्राण जितना शनैः शनैः और सूक्ष्म करके निकाला जावेगा उतना ही उसका प्रभाव निकट देश तक रहेगा और प्रभाव जितना निकट देश तक पड़ेगा उतना ही लाभप्रद भी होगा। यह हमने प्रथम और द्वितीय प्राणायाम को देश-काल संख्या द्वारा दीर्घता और सूक्ष्मता के परिमापण का प्रकार वर्णित किया। स्तम्भवृत्ति प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास की देश संख्या और काल से समालोचना न करके

उसे जहां का तहां, ज्यों का त्यों रोक दिया जाता है। यह तीन प्राणायाम हुये।

४-बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी प्राणायाम

यह अन्तिम तथा पूर्ण प्राणायाम है। अब तक प्राणायाम के एक-एक अवयव का अभ्यास चल रहा था। इसी निरन्तर अभ्यास के प्रभाव से साधक में इस अन्तिम प्राणायाम के करने की योग्यता आसकी है। यद्यपि स्तम्भवृत्ति प्राणायाम में श्वास प्रश्वास दोनों का ही निरोध करना पड़ता है, परन्तु इसमें और चतुर्थ प्राणायाम में बड़ा अन्तर है। स्तम्भवृत्ति में श्वास और प्रश्वास के विषय का ध्यान रखे बिना ही उन्हें रोक दिया जाता है। परन्तु यहां श्वास और प्रश्वास का विषय देश काल और संख्या की आलोचना करते हुये उन दोनों को युगपत् नहीं, क्रम से रोकना पड़ता है। इस प्राणायाम की विधि इस प्रकार है—

सर्वप्रथम पूर्व लिखी विधि अनुसार बाह्य प्राणायाम करें और उड्डियानबन्ध और जालन्धर बन्ध लगालें। मूलबन्ध तो सभी प्राणायामों में अवश्य लगा ही रहता है। थोड़े समय के कुम्भक के पश्चात् जब बाहर से वायु भीतर आने लगे तब श्वास को भीतर न लेकर जालन्धरबन्ध को ढ़ीला कर अन्दर से धक्का देकर वायु को बाहर ही फैंकदें और फिर जालन्धरबन्ध लगालें। ऐसे करने से नाभि के नीचे का सूक्ष्म प्राण बड़े वेग से ऊपर उठेगा और हृदयस्थ प्राण में आकर मिल जायेगा। बाहर से श्वास भीतर लेने की बार-बार तीव्र प्रेरणा होगी किन्तु आप मानसिक इच्छा से वायु को धक्का देकर बाहर ही निकालते रहें। ऐसा करते समय बड़े वेग से हिचकी के सदृश शब्द होगा। शरीर से पसीना छूटने लगेगा। जब अधिक घबराहट होने लगे तब जालन्धरबन्ध को छोड़कर श्वास अन्दर लेलें, यह आधा प्राणायाम हुआ फिर दो-चार सामान्य श्वास-प्रश्वास लेकर आभ्यन्तर प्राणायाम करें, जालन्धरबन्ध लगालें। मूलबन्ध तो पूर्व से ही लगा है। थोड़े समय कुम्भक करने के बाद जब श्वास भीतर से बाहर को निकलने लगे तब मन की इच्छाशक्ति के प्रभाव से श्वास को नीचे दबादें, तथा जालन्धरबन्ध को ढ़ीला कर नासिका द्वारा और श्वास भरकर फिर जालन्धरबन्ध लगादें इस प्रकार करने से थोड़े समय तक श्वास और अन्दर ही रुक जायेगा। इच्छाशक्ति का दबाव निरन्तर रखें। पुनः श्वास ऊपर उठकर बाहर निकलने का यत्न करेगा किन्तु जालन्धरबन्ध लगा होने के कारण नासिका द्वारा बाहर तो न निकल सकेगा किन्तु कुछ प्राण श्वासप्रणाली से अन्नप्रणाली में चला जायेगा। प्राण जब धक्का देकर ऊपर उठता है और अन्नप्रणाली में जाता है तो उस समय एक शब्द उत्पन्न होता है जिसे अभ्यासी लोग स्पष्ट

अनुभव करते हैं। यह ध्वनि डभ, डभ, से कुछ मिलती-जुलती होती है। इस प्रकार साधक बार-बार प्राण को नीचे दबाकर और श्वास लेता रहता है और थोड़ा-थोड़ा श्वास अन्नप्रणाली द्वारा उदर में जाता रहता है और वहां पहुंचकर मलबद्धता (कब्ज) को समूल नष्ट कर देता है। इस प्राणायाम में विशेष परिश्रम करना पड़ता है। प्रत्येक नस नाड़ी प्राण के दबाव से फड़फड़ा उठती है। सारा शरीर पसीने से तरबतर होजाता है। जब विशेष घबराहट अनुभव होने लगे तो जालन्धरबन्ध को हटाकर श्वास बाहर निकालदें। इस प्राणायाम की श्रद्धेय योगिराज स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने भी अपने ग्रंथों में इसी प्रकार की व्याख्या की है। इस प्रकार यह एक प्राणायाम हुआ। यथाशक्ति इसकी संख्या को बढ़ाते चलें। इसका अभ्यास किसी अनुभवी गुरु के ही सान्निध्य में करना चाहिये नहीं तो हानि होने की आशंका रहती है और यथेष्ट उन्नति भी नहीं होपाती। इस प्रकार यह चारों प्राणायामों की विधि पूरी हुई।

लाभ—इस प्राणायाम के अभ्यास से प्रथम अध्याय में वर्णित सभी गुणों का वास साधक में हो जाता है। धातुओं के सब मल एवं अन्तःकरण के पाप भस्मीभूत होकर साधक कृतकृत्य होजाता है। इसके बाद समाधि को समीप ही समझना चाहिये।

प्राणापान की परस्पर आहुति

प्राणायाम के क्षेत्र में इस रहस्य की बड़ी चर्चा हुआ करती है कि प्राणायाम में पूर्ण सिद्धि तभी मिलती है जब आपान की प्राण में, तथा प्राण की अपान में आहुति पड़ने लगे। इसी भाव को व्यक्त करते हुये गीता में श्री कृष्णचन्द्र जी ने भी कुछ विचार व्यक्त किये हैं श्लोक इस प्रकार हैं—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।।

कुछ लोग प्राणायाम में तत्पर प्राण अपान की गति को रोककर अपानवायु में प्राण की और इसी प्रकार प्राणवायु में अपान की आहुति डालते हैं, अन्य नियमित भोजन करनेवाले प्राणों की प्राणों में आहुति डालते हैं। ये सभी यज्ञ को जानने वाले यज्ञ से पाप दूर करनेवाले हैं। इन दो श्लोकों में प्राण की अपान में, अपान की प्राण में, और प्राण की प्राण में आहुति डालने का संकेत है, और ऐसा करनेवाला

साधक प्राणायाम में पारंगत होजाता है, सब पापरहित होजाता है, यह इन आहुतियों के फल भी निर्देश किया है।

इन आहुतियों का स्वरूप आगे दिया जाता है।

अपान की प्राण में आहुति

नाभि से नीचे के भाग में स्थित वायु का नाम अपान है, तथा उदर से ऊपर हृदयप्रदेश में स्थित वायु का नाम प्राण है। चतुर्थ प्राणायाम में जैसे कि हम ऊपर लिख चुके हैं कि जब बाह्यकुम्भक करके मूलबन्धपूर्वक उड्डियानबन्ध लगाया जाता है तो नीचे के प्राण की ऊर्ध्वगति होने लगती है। बार-बार मानसिक शक्ति से जब अन्दर से श्वास बाहर को धकेला जाता है तो नीचे का प्राण अतितीव्रता के साथ हृदयस्थ प्राण में आकर मिल जाता है। जालन्धरबन्ध लगा होने से दोनों प्राण हृदयप्रदेश में स्थित होजाते हैं, यही अपान की प्राण में आहुति है।

प्राण की अपान में आहुति

प्राण की अपान में आहुति भी चतुर्थ प्राणायाम में आभ्यन्तरविषय की आलोचना करते हुये डाली जाती है। जिस समय आभ्यन्तर कुम्भक शक्तिपूर्वक बहुत समय तक किया जाता है तो प्राण ऊपर को उठने लगता है। जालन्धरबन्ध के लगा होने से यह ऊपर उठा हुआ प्राण नासिका से बाहर न निकलकर श्वास-प्रणाली से अन्नप्रणाली में चला जाता है। फिर मानसिक शक्ति से प्राण को छाती में नीचे दबाकर जालन्धरबन्ध को ढीला कर पुनः फेफड़ों में और श्वास भर लिया जाता है, और थोड़े समय बाद फिर प्राण ऊपर उठकर अन्नप्रणाली में चला जाता है। यह क्रिया बार-बार होती रहती है और प्राण की अपान में आहुति पड़ती रहती है। उदर में गया हुआ यह प्राण सभी उदररोगों को नष्ट कर देता है।

प्राण की प्राण में आहुति

यह आहुति तीसरे स्तम्भवृत्ति प्राणायाम में डाली जाती है। इस प्राणायाम में, न प्राण की अपान में और न अपान की प्राण में आहुति डाली जाती है किन्तु प्राण जिस अवस्था में हो उसे रोक दिया जाता है। इसलिये यह प्राण की प्राण में ही आहुति है। इसके अतिरिक्त ध्यान से भी सूक्ष्म प्राण और अपान की परस्पर आहुति डाली जाती है। यह पहले लिखा जाचुका है कि मन और प्राण का घनिष्ठ सम्बन्ध है जिस स्थान पर मन एकाग्र होगा प्राण भी वहीं जाकर स्थिर होजावेगा। जब मन की सब वृत्तियों को रोककर भृकुटि ब्रह्मरन्ध्र आदि मस्तिष्क के स्थानों में मन एकाग्र किया जाता है तो हृदय के नीचे का सूक्ष्म प्राण, जिसकी अपान संज्ञा है

ऊपर उठकर हृदय के प्राण में जाकर मिल जाता है। यह प्राण अपान की परस्पर एक दूसरे में आहुति हुई और जब हृदयस्थ प्राण मस्तिष्कगत प्राण में जाकर मिलता है तो यह प्राण में आहुति कही जाती है।

उपर्युक्त चार प्राणायाम ही मुख्य प्राणायाम हैं किन्तु इन्हीं प्राणायाम में थोड़ा थोड़ा अन्तर करके उपभेदरूप में प्राणायाम के अभ्यासियों ने अन्य प्राणायामों के रूप में नामकरण कर रखा है। किसी न किसी अवस्था में वे प्राणायाम भी साधक को आगे बढ़ने में सहयोग देते हैं। इसी उपयोगिता के कारण उनका संग्रह भी पाठकों को जानकारी की दृष्टि से कर रहा हूं। इन प्राणायामों की उपयोगिता विशेष अवस्था में ही है। इनका दैनिक अभ्यास करना आवश्यक नहीं।

१—भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका संस्कृत में लुहार की धौंकनी को कहते हैं। लुहार या सुनार एक गति से जिस प्रकार अपनी धौंकनी धौंकते हैं, उसी प्रकार श्वास प्रश्वास की क्रिया करनी चाहिये। जोर-जोर से श्वास लेना और निकालना भस्त्रिका प्राणायाम की विशेषता है।

पद्मासन अथवा सिद्धासन पर बैठकर शरीर-गर्दन-सिर को एक सीध में रखें। हथेलियां घुटनों पर हों। २१ बार लुहार की धौंकनी के समान श्वास लें और निकाल दें। साथ ही छाती को फुलाता और संकुचित करता जाये। श्वास अन्दर भरते समय उदर बाहर तथा श्वास बाहर निकालते समय उदर अन्दर संकुचित करलें। एक के बाद दूसरा श्वास बिना रुके निरन्तर लेते रहें। नौ बार से लेकर यथाशक्ति २१ बार इस प्रकार श्वास प्रश्वासक्रिया करके एक बार लम्बा श्वास लें, उसे यथाशक्ति अन्दर रोक के नासिका द्वारा बाहर निकालदें। इस प्रकार एक प्राणायाम हुआ। सायं प्रातः प्राणायाम के आरम्भ में तथा अभ्यास के पश्चात् १ से ३ बार तक कर लेना चाहिये। कुछ लोग इसे इतना बढ़ा देते हैं कि वे थकने तक करते रहते हैं। इससे बहुत पसीना निकलेगा। यह कठिन व्यायाम है। इससे सिर चकराने लगे तो रुककर विश्राम करलें। प्रत्येक प्राणायाम के बाद दो मिनट आराम करना चाहिये।

लाभ—भस्त्रिका प्राणायाम से गले की पीड़ा दूर होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। कफ का विकार नष्ट होता है। नाक और छाती की व्याधि दूर होती है। दमा क्षय आदि रोग दूर होते हैं। कुण्डलिनी जागृत होती है। शरीर को गर्मी मिलती है। नाड़ियां शुद्ध होती हैं। सभी प्रकार के कुम्भकों में यह उत्तम है। इसका

अभ्यास कर लेना चाहिये। भस्त्रिका प्राणायाम की आवृत्ति अपनी शक्ति अनुसार करनी चाहिये। अभ्यास में अति करना ठीक नहीं।

२—प्लावनी प्राणायाम

इस प्राणायाम में उदर में श्वास भरने का अभ्यास किया जाता है। पेट में वायु भरके मसक या रबड़ के गोले के समान फुला दिया जाता है। खूब वायु भर जाने पर पेट में ठोकने पर एक प्रकार की आवाज सी होने लगती है। परन्तु इस में यह ध्यान रखने की बात है कि जिस समय उदर में वायु भरें तब शरीर के अन्य अंगों में वायु न होना चाहिये तभी प्लावनी सिद्ध होगा।

इस प्राणायाम में साधक का प्राण पर तो अधिकार हो ही जाता है साथ ही उदर के सब रोगों का नाश होकर पेट रेशम के समान कोमल हो आरोग्यता का विकास करता है। कब्ज तो जड़ मूल से ही मिट जाती है। जिसको सर्वरोगों की जननी कहते हैं। अपानवायु की शुद्धि, मल-मूत्र का निर्विघ्न त्याग होना, पाचन-शक्ति की वृद्धि, वीर्य एवं रक्त की शुद्धि आदि अनेक लाभ होते हैं। प्लावनी प्राणायाम करके इच्छानुसार पानी पर भी पड़ा रहा जा सकता है। फिर उड्डियान बन्ध करके वायु धीरे-धीरे बाहर निकालदें। इस प्राणायाम को किसी अनुभवी से सीख लेना चाहिये। जो मनुष्य इस के अभ्यासी होते हैं वे कुछ दिन तक बिना आहार के भी रह सकते हैं। इस प्रकार का वर्णन है।

३—शीतली प्राणायाम

जीभ को लम्बी करके नली की भांति मोड़लें। सिसकारी भरते हुये मुँह से श्वास लें और आराम से जितनी देर होसके वायु को रोके रखें, फिर नासिका द्वारा वायु बाहर निकालदें। यह प्राणायाम बैठे-बैठे, खड़े रहकर अथवा चलते हुये भी १० से १५ मिनट तक किया जासकता है।

इस प्राणायाम के अभ्यास से रक्त शुद्ध होता है। भूख-प्यास कम होती है। आमाशय को शीतलता मिलती है। गुल्म-प्लीहा, संक्रामक रोग, ज्वर, क्षय, अपच, बवासीर आदि रोग दूर होते हैं। प्यास लगने पर इस के अभ्यास से प्यास शान्त होजाती है।

४—शीतकारी प्राणायाम

जीभ को इस प्रकार मोड़ें कि उसका सिरा तालु से लगा रहे और मुँह से सिसकारी के साथ श्वास खींचे, अथवा दांतों की पंक्तियों को एक दूसरे से मिला दो और जीभ को दांतों से सटाकर सीत्कार जैसी आवाज करते हुये मुख से शनैः

शनैः श्वास अन्दर भरो। यथाशक्ति अन्दर रोककर नासिका द्वारा बाहर निकाल दो। इसे भी बैठकर, खड़े होकर तथा चलते चलते किया जासकता है। १० बार तक इसे करना चाहिये।

इस प्राणायाम के अभ्यास से शक्ति और सौन्दर्य की प्राप्ति होती है। भूख-प्यास आलस्य निन्द्रा कम होती है। पित्त के विकार शांत होते हैं।

५—उज्जायी प्राणायाम

पद्मासन या सिद्धासन पर बैठ जायें और मुँह बन्द करलें। धीरे-धीरे और एक ही श्वास में जितना फेफड़े लेसकें वायु अन्दर खींचें, फिर जालन्धर बन्ध लगालें। यथाशक्ति वायु को रोककर बांयें नासारन्ध्र से धीरे-धीरे बाहर फेंकें। विरेचन जितना धीरे-धीरे हुआ करता है उतना ही प्राणायामों का फल अधिक होता है। यह बात सभी प्राणायामों में ध्यान रखने योग्य है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि श्वास लेने के पश्चात् वायु फेफड़े से हटाकर मुँह में भरलें और तब मुँह से उसे बाहर निकालें। इस के अभ्यास से सिर की उष्णता दूर होती है, शरीर में सौन्दर्य बढ़ता है और जटाराग्नि प्रदीप्त होती है। दमा, क्षय, फुफ्फुस सम्बन्धित रोग दूर होते हैं। सायं प्रातः ४ बार इसका अभ्यास किया जासकता है।

६. सूर्यभेद प्राणायाम

इस प्राणायाम की विशेषता यह है कि केवल सूर्यनाड़ी अर्थात् दाहिने नासारन्ध्र से ही श्वास प्रश्वास की क्रिया की जाती है।

सिद्धासन या पद्मासन पर निश्चिन्त मन से बैठ जायें, पुनः अति धीरे-धीरे दाहिने नासारन्ध्र से श्वास इतना अन्दर खींचे कि यथासंभव वायु अन्दर चला जावे। इसके बाद जालन्धरबन्ध लगालें। वायु अन्दर भरे रखें, पसीना आने तक श्वास को अन्दर ही रोके रहें। घबराहट होने पर जालन्धरबन्ध हटाकर दाहिने नासारन्ध्र से प्रश्वास क्रिया करें। यह श्वास प्रश्वास की क्रिया बहुत धीरे-धीरे होनी चाहिये। एक बार सब वायु जोर से निकालना ठीक नहीं।

सूर्यभेद प्राणायाम के अभ्यास से पेट और अन्तड़ियों के रोग दूर होते हैं। वात रोग, नाकसम्बन्धी रोग, जुकाम आदि नष्ट होकर अभ्यासी को दीर्घायु और शक्ति प्राप्त होती है तथा कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।

७. सुखद प्राणायाम

पद्मासन या सिद्धासन से बैठकर शनैः शनैः वायु को अन्दर खींचो, पहले फेफड़े के नीचे के भाग को भरो। मन में प्रबल इच्छा रखो कि फेफड़े का

अधोभाग वायु से भर रहा है। इससे कुछ पेट फूलेगा। इसके बाद इसी श्वास से फेफड़े के मध्यभाग में वायु पहुँचाओ। प्रत्येक क्रिया के साथ मानसिक शक्ति का सम्बन्ध बना रहे। इन क्रियाओं से पेट कुछ पिचकेगा और छाती कुछ उभरेगी। इसके बाद श्वास के तीसरे और अन्तिम भाग से फेफड़े के ऊपरी भाग को भरो, इस क्रिया से पूर्व दोनों कन्धे ऊपर उठालो, इन तीन क्रियाओं से पूरा कुम्भक करो। लगभग एक मिनट तक वायु भरी रहे। फिर सीटी बजाने के समान मुखाकृत्ति बनाकर वेग से तीन से अधिक बार में थोड़ा-थोड़ा श्वास बाहर फैंको। एक बार फैंककर कुछ रुक जाओ, इसी प्रकार कुछ रुक-रुक कर बलपूर्वक श्वास बाहर फैंको। यह एक प्राणायाम हुआ।

इस प्राणायाम से शरीर को विश्राम मिलता है। थकान दूर होती है। शरीर बलवान् स्वस्थ सुन्दर बनता है। रजोगुण व तमोगुण दूर होकर मन एकाग्र होता है। इसका अभ्यास प्रत्येक प्रकार के व्यायाम प्राणायाम के अन्त में करना चाहिये।

८-भ्रामरी प्राणायाम

इच्छानुसार आसन लगाकर दोनों नासारन्ध्रों से पूरक करें। फिर यथाशक्ति कुम्भक करके भ्रमर के समान भौंरे जैसा ऊं ऊं ऊं ऊं.......... शब्द करते हुये दोनों नासिकाछिद्रों से श्वास निकालदें। इसमें भ्रमर के समान ध्वनि होने से इस प्राणायाम का नाम भ्रामरी प्राणायाम है।

भ्रामरी प्राणायाम से मन की चंचलता दूर होकर शांत होता है। मन को अति आनन्द का अनुभव होता है।

९-समवृत्ति प्राणायाम

यह प्राणायाम शरीर की दुर्बलता को दूर करने के लिये अचूक प्रयोग है। इसका नाम समवृत्ति इस कारण से है कि इसमें पूरक-कुम्भक रेचक समान वृत्तियों में होते हैं। अर्थात् पूरक रेचक प्राणायाम इतने सूक्ष्मता से किये जाते हैं कि साधक को थोड़ा भी श्रम तथा शब्द का अनुभव नहीं होता।

प्राणायाम की विधि इस प्रकार है कि सामान्यतया किसी भी सुखद आसन से बैठकर अति शनैः शनैः सूक्ष्मभाव से श्वास को उदर एवं फेफड़ों के सब भागों में अच्छी प्रकार भरलें, बिना विशेष शक्ति लगाये केवल मानसिक प्रभाव के कारण श्वास को कुछ समय तक भीतर ही रोकने का अभ्यास करें। फिर शनैः शनैः बिना शब्द और श्रम के बाहर निकालदें, तथा थोड़े समय तक प्राण को बाहर ही स्तम्भित करें। यह प्राणायाम स्वाभाविकरूप से प्रसन्तापूर्वक करें। उदर तथा

फेफड़ों पर दबाव न पड़नेदें। इस प्रकार शक्ति अनुसार प्रतिदिन इस प्राणायाम का अभ्यास करने से अशक्त मनुष्य भी सशक्त होजाता है।

इस प्राणायाम का अभ्यास धैर्यपूर्वक लम्बे काल तक करने से सब रोगों का नाश होकर गईहुई शक्ति पुनः प्राप्त होजाती है। नियमितरूप से इसे करने पर क्षय(तपेदिक) आदि भंयकर रोगों का भी समूल उच्छेद करने का सामर्थ्य इस प्राणायाम में है। सब प्रकार की निर्बलताएं, निराशाएं दूर होकर साधक आनन्दविभोर हो उठता है। इस प्राणायाम में यह विशेष ध्यन देने योग्य शर्त है कि श्वास का शब्द अपने कान तक भी न सुनाई पड़े और न ही फेफड़ों का किसी भी प्रकार का श्रम हो, तभी इससे पूर्वोक्त लाभ होंगे। अन्यथा दुर्बल अवस्था में फेफड़ों में वायु के दबाव से हानि होने की भी सम्भावना रहती है।

१०-अग्नि प्रदीप्त प्राणायाम

एक बार अमृतसर निवासी चौधरी जयकिशन जी महर्षि दयानन्द सरस्वती के पास सत्संग के लिये गये तो देखा कि स्वामी जी प्राणायाम कररहे हैं और उनके शरीर पर पसीना बड़े वेग से बह रहा है, और सम्पूर्ण शरीर रक्तवर्ण होरहा है, मुखमण्डल तेज से प्रदीप्त है। दृष्टि स्वामी जी की ओर नहीं जमती थी। ऐसी अवस्था देखकर वे चकित थे। जब प्राणायाम समाप्त करके सत्संग में बैठे तब उन्होंने प्रश्न किया—महाराज जी क्या यह बतलाने की कृपा करेंगे कि आप कौनसा प्राणायाम करते हैं, उसका नाम क्या है? उत्तर—महर्षि ने कहा इसको अग्निप्रदीप्त कहा करते हैं। इसकी विधि यह है—सुखासन से बैठकर प्राण को धीरे-धीरे पूरक द्वारा मूलाधार तक भरदें फिर बलपूर्वक कुम्भक करें कि छाती और मुख लाल वर्ण होजायें। प्रारम्भ में अधिक कुम्भक न करें, शनैः शनैः बढ़ाते जायें, शिर की ओर प्राण का वेग न जाने पावे नहीं तो मूर्च्छा होने का भय होता है। घबराहट होने पर रेचक अर्थात् प्राण को बाहर निकालदें। इस प्राणायाम के गुणों का वर्णन करते हुए महर्षि ने कहा कि इस प्राणायाम से शीत का निवारण होजाता है। योगी, तपस्वी हिमगिरि में बैठकर इसी प्राणायाम का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्राणायाम से जठराग्नि प्रदीप्त होकर शरीर हल्का होजाता है। उत्साह, स्वर में मधुरता, बल, ओज, तेज, धैर्य एवं सौन्दर्य की वृद्धि होकर सब रोग नष्ट होजाते हैं। इसी प्राणायाम के आधार पर महर्षि घोर शीतकाल में भी अनेक बार सहसा ही पसीना निकालदेते थे, जिसे देख भक्तजन अतिश्रद्धान्वित होकर नतमस्तक होजाते थे।

११-क्षुधातृषानिवारक प्राणायाम

पद्मासन से बैठकर हथेलियों को दोनों घुटनों पर स्थिर करके कण्ठ और मुख को बन्द कर ओ३म् शब्द करते हुए मुख में वायु उत्पन्न करें तथा जल की घूट के समान वायु की घूट उदर में भरते जायें। प्रथम दिन पांच बार इस प्रकार वायुपान करें। प्रतिदिन पांच घूट बढ़ाते जावें। फिर कुछ दिनों के अभ्यास से उदर वायु से पूर्ण होजाया करेगा। । ३० मिनट का अभ्यास होजाने पर वायु से भरा उदर फूलकर जलपूर्णमशक के समान भारी होजाता है। फिर पूर्व अवस्था में आने के लिये कई मिनट तक कई बार मयूरासन करके शीर्षासन करना होता है। अथवा मयूरासन और सर्वाङ्गासन करना चाहिए। ऐसा करने से यह वायु अपानवायु के रूप में गुदाद्वार से निकला करता है। इस प्रकार एक घण्टे का समय पूर्व अवस्था में आने में लग जाता है। इस प्राणायाम से यह लाभ होता है कि भूख प्यास का अभाव होकर कई दिनों तक निराहार रहकर भी योगी निश्चिन्त समाधि का अनुष्ठान कर सकता है। इस प्राणायाम को वायुपान प्राणायाम भी कहते हैं।

प्राणायाम के बल पर चमत्कारिक प्रदर्शन

प्राणायाम जहां हमारे शरीर के सब विकारों को नष्ट करके विकास में परम सहायक है वहां शक्ति का अपार भण्डार भी है। ब्रह्मचर्य विद्या एवं श्रद्धापूर्वक निरन्तर लम्बे काल तक प्राणायाम का अभ्यास करने से शरीर का अतिशय बल बढ़ता है। प्राणायाम के द्वारा मनुष्य शरीर की सम्पूर्ण शक्ति किसी भी एक अंग में केन्द्रित करके आश्चर्यजनक पराक्रम दिखा सकता है। महर्षि दयानन्द जी एवं प्रो० राममूर्ति आधुनिक युग में प्राणायाम के बल पर अद्भुतशक्ति का परिचय दे चुके हैं। अब मैं इस प्रकार के कुछ प्रदर्शनों की विधि लिखूँगा जिनके अनुसार प्रत्येक साधक ब्रह्मचारी प्राणायाम का महत्त्व क्रियात्मकरूप में सामान्य लोगों के समक्ष भी स्थापित कर सकेंगे।

छाती पर भारी पत्थर तोड़ने की विधि

शक्ति का प्रदर्शन करने से पूर्व प्रत्येक अभ्यासी को शरीर में पर्याप्त बल संचित कर लेना चाहिये। इसके लिए न्यून से न्यून ५, ७ मिनट का आभ्यन्तरकुम्भक तथा अनेकवर्षों का अखण्डित ब्रह्मचर्यपालन अत्यावश्यक है। इसके अभाव में अनेक बार अधिक बल लगाने से हृदय की रक्तवाहिनीधमनियां फट जाती हैं। जिससे आजीवन भंयकर पीड़ा से पीड़ित रहना पड़ता है। छाती पर भारी पत्थर

तुड़वाने की विधि इस प्रकार है—

समतलभूमि पर एक मोटा रूई का गद्दा इस प्रकार बिछालें कि लेटने पर गर्दन छाती के समतल वा कुछ ऊंची रहे। गद्दे पर सीधे लेटकर वक्षःस्थल पर एक और मोटा रूई का गद्दा रखलें। उसके ऊपर लकड़ी का चौड़ा तखता रखें। तखता दृढ़ लकड़ी से निर्मित होना चाहिये जिसके टूटने की किञ्चित् भी आशंका न हो। दोनों हाथ भूमि पर शरीर के साथ पार्श्वों में फैले रहें। शरीर और मन में उत्साह तथा दृढ़ विश्वास रहना चाहिये। भगवान् के प्रति मन में अतिकृतज्ञता एवं शक्तिप्राप्ति की प्रार्थना करनी चाहिये। इसके बाद सर्वप्रथम लेटे हुये ही पूरक प्राणायाम कर कुम्भक करें तथा जालन्धरबन्ध लगालें। इसका विशेष ध्यान रखें कि श्वास का वेग मस्तिष्क की ओर न होने पावे। मानसिकशक्ति से प्राण को छाती में ही रोके रखें। यदि असावधानी से प्राण मस्तिष्क में चला गया तो निश्चित ही मूर्च्छा (बेहोशी) होजावेगी। इस विषय में असावधानी होने पर अनेक व्यक्तियों के प्राण मूर्च्छित अवस्था में ही सदैव के लिये कूच कर जाते हैं। अतः इस प्रकार के प्रदर्शनों में विशेष ध्यान रखना चाहिये। प्रारम्भ में अभ्यास करते समय हल्के-हल्के पत्थर छाती पर रखकर तुडवाने चाहियें। इस प्रकार शनैः शनैः अभ्यास बढ़ाकर पचास मन भार के पत्थर को भी अपनी छाती पर रखकर भारी घनों और हथोड़ों के आघातों को सहन करके लोगों को आश्चर्यचकित कर सकेंगे। अनेक महानुभाव लोकैषणा से अभिभूत होकर शक्ति से अधिक बलप्रदर्शन का दुस्साहस कर बैठते हैं जो कि सदैव हानिप्रद सिद्ध होता है। अतः अभ्यास को शक्ति अनुसार शनैः शनैः धैर्य के साथ बढ़ाना चाहिये। शक्तिसंचय के लिये सात्त्विक-पौष्टिक पदार्थ घी-दूध-बादाम आदि का प्रचुरमात्रा में सेवन करना चाहिये।

लोहे की जंजीर तोड़ने की प्रणाली

लोहे की जंजीर तोड़ते समय श्वास निकालकर पुनः वेग से भरके शक्ति लगाई जासकती है। किन्तु पत्थर रखते समय अथवा मोटर रोकते समय ऐसा करना मानो स्वयं मौत के मुंह में प्रविष्ट करना है। जंजीर तोड़ते समय बार-बार श्वास भरके तोड़ने में अनेक लाभ हैं। प्रथम तो ऐसा करने से शरीर में उष्णता आने से वेगपूर्वक शक्ति लगाने पर सरलता रहती है। उचित अवसर पाकर झटका मारने से जंजीर आसानी से टूटती है। इसके अतिरिक्त ऐसा करने से दर्शकों के ऊपर प्रभाव भी अधिक पड़ता है।

जंजीर तोड़ते समय दो कुर्सियों के बीच एक आड़ी लकड़ी रख उसमें जंजीर

अटकादी जाती है। कुर्सियों पर एक-एक मनुष्य बैठा दिया जाता है। स्वयं भी लकड़ी पर ही खड़े होना पड़ता है। जंजीर तोड़ने से पूर्व ही इतनी तंग रखनी चाहिये कि तोड़ते समय ढ़ीली होजाने के कारण फिर दूसरी बार छोटी न करनी पड़े। पीठ पर एक मोटा रूई का गद्दा रखें, जिससे रगड़ के कारण कमर पर त्वचा न छिल सके। जंजीर सदैव आगे की अपेक्षा पीठ पीछे अधिक तंग रखकर फिर कन्धों को पीठ पीछे की ओर थोड़ा मोड़कर और झटका देकर तोड़ना चाहिये। जंजीर तोड़ना भी शनैः शनैः अभ्यास का ही फल है। प्राणायाम, ब्रह्मचर्य आदि का विशेष अभ्यास पूर्ववत् शक्ति से सम्भव प्रत्येक प्रदर्शन के लिये आवश्यक है।

मोटर रोकने का सरल साधन

मोटर रोकने के लिये प्राणायाम के विशेष अभ्यास की आवश्यकता है। प्रारम्भिक अभ्यास के लिये कठोरभूमि में एक खूंटा गाडकर और उसमें एक रस्सी बांधकर उखाड़ने का अभ्यास करना चाहिये। मोटर चलाने से पूर्व ही आभ्यन्तर कुम्भक करके रस्से जोर से खींच लेने चाहियें। पूरक प्राणायाम करके पूरी शक्ति के साथ आरम्भ में ही कुम्भक करें। मध्य में रस्से ढ़ीले न करें। ऐसा करने से भारी आघात पहुंचने की आशंका रहती है। मोटर चालक को सहसा ही वेग से मोटर न चलानी चाहिये अपितु आरम्भ में शनैः शनैः चलाकर फिर पूर्ण शक्ति लगवाने में सुविधा रहती है। सामने दो खूंटे गाडकर उनमें लकड़ी का तखता अटका के तखते के साथ दोनों पैर लगा लेने चाहियें और मोटर के साथ मोटा रस्सा बांधकर अपनी भुजाओं में बांध लेना चाहिये। गर्दन थोड़ी तिरछी रहे। श्वास मानसिक शक्ति से छाती एवं भुजाओं में स्थिर किया जावे। इस प्रकार शनैः शनैः अभ्यास से मोटर रोकने में सफलता प्राप्त की जासकती है।

ग्रीवा से लोहे के मोटे-मोटे सरियों को मोड़ना

लोहे के सरिये मोड़ने के लिये गले में कुम्भक का अभ्यास करना होता है। जिस प्रकार रबड़ की ट्यूब में वायु भरने से मनों बोझ से भी नीचे नहीं दबती उसी प्रकार ग्रीवा में प्राणवायु को भरकर कुम्भक करने से अधिकाधिक शक्ति लगाने पर भी ग्रीवा पीछे को नहीं हटती।

जब गले में कुम्भक का अच्छी प्रकार अभ्यास होजावे तब लोहे का आठ नौ फीट लम्बा सरिया लें। इसके दोनों भाग अच्छी प्रकार से गोल करलें। जिससे ग्रीवा में चुभकर हानि पहुंचने की आशंका न रहे। सरिये का एक भाग किसी तखते आदि पर छाती के समान ऊंचाई पर लगावें। दो तीन व्यक्ति तखते और

सरिये को भलीभांति साधे रहें। सरिये का दूसरा सिरा ग्रीवा में टेटवे के नीचे तथा वक्षोस्थि के ऊपर खालीस्थान में लगावें। सरिया हड्डी या टेटवे पर न लगाना चाहिये। क्योंकि हड्डी पर लगाने से त्वचा उतरकर रक्त आने लगता है, तथा टेटवे पर लगाने से थोड़े दबाव से ही खांसी आने लगती है। अत: दोनों के मध्य का भाग ही अत्युपयुक्त है। सरिया मोड़ते समय ग्रीवा में खूब श्वास भरके ग्रीवा को फुला लें तथा वक्षस्थल का बल लगाकर झटका दें। सरिये के लगने से गले में जो पीड़ा हो उसकी ओर ध्यान न देकर शक्ति लगावें। आरम्भ में पतले सरियों को गर्दन में कपड़ा लगाकर मोड़ने का अभ्यास करें। निरन्तर अभ्यास से ग्रीवा की त्वचा दृढ़ होजावेगी। अभ्यास के बाद त्वचा का हाथ से मर्दन कर लेना चाहिये। ऐसा करने से किसी प्रकार का छाला आदि गले में नहीं पड़ता। शनैः शनैः अभ्यास होने पर बिना किसी कष्ट के मोटे-मोटे सरियों को सरलता से मोड़कर जनता को आश्चर्यचकित कर सकेंगे।

नाड़ी अवरोधक प्राणायाम

पद्मासन से बैठकर बायें नाक से पूरक करके वायु को यथाशक्ति मूलाधार तक भरलें। मुट्ठियों को बांधकर दोनों घुटनों पर रखें। पूरक द्वारा अन्दर गई वायु को वक्षस्थल की ओर से दक्षिण भुजा की ओर संकल्पशक्ति से प्रेरित करें। यह क्रिया तब तक करते रहें जब तक हाथ फूलकर कठोर तथा नाड़ी स्तम्भित होने लगे। जब तक नाड़ी पूर्णतया रुक न जाये तब तक छोटे-छोटे पूरक तथा कुम्भक करके अन्त:प्राण को हाथ में भेजते रहें। प्राणवायु के पूर्णतया भर जाने से, रक्तसंचार रुक जाने से, अन्त में नाड़ी रुककर लुप्तप्राय होजाती है। कुछ काल तक अभ्यास करने पर प्राण को हाथ में केन्द्रित करने की विधि आजाती है। खेल में दिखाने के लिये श्वास को प्रथम बाहों में भरा जाता है। शेष शरीर पूर्वस्थिति में जैसा का तैसा बना रहता है। कई बार रक्तसंचार कुछ देर के लिये इतना स्तब्ध होजाता है कि नाड़ियां नीली प्रतीत होने लगती हैं।

इस प्रकार से प्राणायाम का अनेक प्रकार अभ्यास करने से मनुष्य अद्भुत पराक्रम दिखाकर जनता को आश्चर्यचकित कर सकता है। वास्तव में प्राण ही शक्ति का भण्डार है।

इति चतुर्थोऽध्याय:।

पंचम अध्याय

प्राणायाम से रोग निवारण

हम प्रथमाध्याय में ऋग्वेद के मन्त्रों से यह सिद्ध कर चुके हैं कि प्राण एक सर्वश्रेष्ठ औषध है। शरीर के प्रत्येक अवयव पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। नित्यप्रति प्राणायाम का अभ्यास करनेवाले मनुष्य के शरीर के सब दोष क्षीण होकर स्वास्थ्य अति उत्तम बन जाता है। प्राणायाम के अन्दर यह एक विशेष गुण है कि यह व्यर्थ की चर्बी सुखाकर जहां साम्यावस्था में कर देता है वहां कृशकाय व्यक्ति के शरीर में धातुओं की वृद्धि कर परिपुष्ट भी बना देता है। आयुर्वेद के अनुसार अधिक मोटे मेदस्वी मनुष्य को स्वस्थ न मानकर एक भिन्न ही लक्षण किया है। यथा—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

अर्थात् जिस मनुष्य के वात पित्त कफ तीनों दोष, जठराग्नि, रस रक्त मांस भेद अस्थि मज्जा शुक्र आदि धातुएं साम्यावस्था में हैं, पुरीष मूत्र आदि मलों का विसर्जन उचित परिमाण से ठीक समय पर होता है, आत्मा एवं इन्द्रियां प्रसन्न उत्साहयुक्त हैं वही स्वस्थ है।

प्राणायाम करनेवाले मनुष्य के उपर्युक्त लक्षण अनायास ही सिद्ध होजाते हैं। सभी रोगों का उद्‌गमस्थान उदर है। मिथ्या आहार विहार करने से सर्वप्रथम वात पित्त कफ आदि दोष उदर में ही कुपित होते हैं, और फिर भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर भिन्न-भिन्न रोगों के उत्पादक बनजाते हैं। उदर को ही सब रोगों का उत्पत्ति-स्थान मानकर आज प्राकृतिकचिकित्सा को माननेवाले विद्वान् सभी रोगों की चिकित्सा उदर के ही उपचार को प्रधानता देकर करते हैं, तथा इस विषय में वे पर्याप्त सफल भी देखे जाते हैं। आयुर्वेद के अनुसार भी प्रधानरूप से उदर ही सब रोगों का जनक है। यदि हम अपने उदर को स्वस्थ एवं सक्रिय रख सकें तो निश्चित ही रोगों से मुक्ति प्राप्त करने में सफल होसकते हैं। रोग की उत्पत्ति के पश्चात् विविध औषधियों से उसे नष्ट करने की अपेक्षा यदि रोग पैदा ही न हों तो यह सर्वश्रेष्ठ प्रयास है। प्राणायाम एक ऐसी सफल क्रिया है जिससे शरीर में मल होगा प्राण वहीं पहुंचकर उससे टकरायेगा तथा उस विकार को शरीर से बाहर

निकाल कर ही दम लेगा।

वात पित्त कफ ये शरीर में धातु दोष एवं मल रूप में कार्य करते हैं। जब ये तीनों साम्यावस्था में शुद्ध रूप में होते हैं तो शरीर को धारण करने से धातु कहलाते हैं। जब दूषित होकर हानि करते हैं तो इनकी संज्ञा दोष होजाती है तथा ये ही वात पित्त कफ अतिदूषित होकर शरीर में शमन के अयोग्य होजाते हैं तो इनको मल के नाम से कहा जाता है। पित्त और कफ दोनों ही अपने रूप में पङ्गु हैं। वायु ही इन्हें इधर-उधर शरीर के भागों में लेजाता है। इसी कारण वायु का ही प्राधान्य है। वायु के ठीक होने पर कफ पित्त भी ठीक कार्य करते हैं। शरीर में वायु अपने आप को दस भागों में बांटकर कार्य करता है। कार्यभेद से वायु के नाम भी दस ही प्रसिद्ध हैं। १.प्राणवायु, २.अपानवायु, ३. व्यानवायु, ४. समानवायु, ५. उदानवायु, ६. देवदत्तवायु, ७. कृकलवायु, ८. धनञ्जयवायु, ९. नागवायु, १०. कूर्मवायु,।

प्राणायाम करने से यह दसों प्रकार का वायु शुद्ध एवं परिपुष्ट होकर अपने कार्यों को अच्छी प्रकार करता है। जिससे सम्पूर्ण विकार क्षीण होकर शरीर निर्मल रोगरहित होजाता है। इस प्रकार प्राणायाम रोग के मूल को ही समाप्त कर मनुष्य को निश्चिन्त बना देता है। ऊपर हमने स्वस्थ मनुष्य के लिये प्राणायाम की उपयोगिता पर विचार किया, अब हम यह बताने का यत्न करेंगे कि उत्पन्न हुये रोगों को प्राणायाम के द्वारा नष्ट कर शारीरिकशक्तियों का विकास किस प्रकार किया जा सकता है।

सर्वव्याधिनिवारक प्राणायाम

चाहे शरीर के किसी भी अंग में किसी भी प्रकार की व्याधि हो उसे दूर करने के लिये निम्न क्रिया करनी चाहिये। सर्वप्रथम शरीर को कुछ शिथिल करके गहरा श्वास लो, फिर जिस स्थान पर पीड़ा वा व्याधि हो उस पर अपना हाथ रखो। फिर अपनी चित्त की वृत्ति को व्याधि के स्थान पर स्थिर करो।

मानलो तुम्हारी छाती में दर्द है। तो उस समय शरीर के किसी भी अवयव की ओर ध्यान न लेजाकर केवल छाती की ओर मन लगाओ। ऐसा प्रतीत होने लगे कि छाती को छोड़ शरीर का और कोई अवयव है ही नहीं। इस प्रकार वह अंग तुम्हारी चित्तवृत्ति का केन्द्र बन जावेगा। मन की वृत्ति के अनुसार सूक्ष्म प्राण की गति पीड़ास्थल की ओर होजावेगी। जिस प्रकार सामान्य कांच के अन्दर सूर्य

किरणों को संगृहीत करने की शक्ति न होने से अग्नि उत्पन्न नहीं होसकती, किन्तु सूर्यकान्त कांच के द्वारा धूप में थोड़े समय में ही अग्नि उत्पन्न होजाती है, इसी प्रकार सारे शरीर में फैला हुआ प्राण रोगनिवारण में असमर्थ था। ध्यान के द्वारा एकस्थान पर केन्द्रित करने से अद्भुत परिणाम दिखाई देता है। जिस स्थान पर व्याधि है वहां पर मन की वृत्ति केन्द्रित करके यह दृढ़ धारणा करें कि रोग हमारे शरीर से निकलकर प्रश्वास द्वारा दूर होरहा है तथा जो श्वास हम ग्रहण कर रहे हैं उसके द्वारा शक्ति प्राप्त होरही है। इस प्रकार तुम आत्मविश्वास के साथ तीव्र आज्ञा दो कि सम्पूर्ण व्याधि मेरे शरीर से निकलजावे। फिर उसके बाद बिना किसी संकोच के यह अनुभव करें कि व्याधि शरीर से बाहर निकलरही है। इस प्रकार क्रिया करने से तुम्हारी मानसिकशक्ति बढ़ जावेगी। प्राण मनकी वृत्ति अनुसार पीड़ास्थल पर अपना कार्य करना आरम्भ करदेगा और आप स्वास्थ्य लाभ करेंगे। इस प्रकार आप प्रत्येक रोग पर इस क्रिया का प्रयोग कर सकते हैं। इच्छाशक्ति जितनी बलवती होगी उतनी शीघ्रता से प्राण भी अपना कार्य करेगा तथा शीघ्र ही लाभ प्रतीत होने लगेगा। कदाचित् शीघ्र लाभ न भी हो तो भी इस क्रिया को शीघ्र मत छोड़ो। क्योंकि फलप्राप्ति में विलम्ब होने का कारण क्रिया की शिथिलता ही है। क्रिया को दीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक करने पर सफलता अवश्य मिलती है। इस रीति के द्वारा प्रत्येक व्याधि को दूर किया जासकता है।

बुद्धिवर्धक प्राणायाम

ब्रह्मचर्यपालन न करने से, निरन्तर बौद्धिक परिश्रम अत्यधिक करने से, चिन्ता-शोक-भय-क्रोध-लोभ-मोह आदि मानसिकविकारों द्वारा अभिभूत होने से, मन को एक विषय में केन्द्रित न करने से, उदर की शुद्धि ठीक प्रकार से न होने से, भूख न लगने से, शरीर के अतिकृश होने से, मद्य-मांस-तम्बाकू आदि मादकद्रव्यों का सेवन करने से, किसी भयकर चोट के आघात से तथा अन्य किसी प्रकार के विपरीत आहार विहार से मनुष्य के वात पित्त दोष कुपित होकर मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुओं को शिथिल कर देते हैं, जिससे सिर में भारीपन, मानसिक एवं शारीरिक थकान, स्मरणशक्ति का न्यून होना, सुनी और देखी हुई वस्तु को शीघ्र भूल जाना, बौद्धिककार्यों में मन का न लगना आदि लक्षण प्रकट होते हैं जिनसे मनुष्य हर समय चिन्तित एवं निराश रहता है। इस प्रकार के व्यक्ति को

निम्न प्रकार का प्राणायाम करना चाहिये।

इस विषय में महर्षि दयानन्द जी महाराज सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में विद्यार्थियों के लिये प्राणायामविधान करते हुए लिखते हैं— "**चौथा बाह्याभ्यन्तराक्षेपी**" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उसके विरुद्ध न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर लें, और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाये। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप होजाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्यवृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इस प्रकार योगाभ्यास करे।"

यहां महर्षि ने प्राणायाम से स्पष्ट ही बुद्धि बढ़ने का निर्देश किया है, जो कि अनुभूत एवं प्रामाणिक है। इस प्राणायाम की विस्तार से हम चतुर्थ अध्याय में चर्चा करचुके हैं। इसके अतिरिक्त प्रात:काल जलनेति, उज्जायी प्राणायाम, शीर्षासन, वृक्षासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, हलासन, चक्रासन आदि भी अत्युपयोगी हैं। मस्तिष्क को हानि पहुंचानेवाला सब आहार विहार बन्द कर देना चाहिये। मन में यह दृढ़ विश्वास रखना आवश्यक है कि मेरी बुद्धि किसी से कम नहीं तथा शनैः शनैः बढ़ रही है। काम क्रोध चिन्ता आदि मानसिक आवेशों से पृथक् होकर सदैव प्रसन्नचित्त रहने का अभ्यास करे।

भोजन पौष्टिक सात्त्विक और स्निग्ध करें। ब्रह्मचर्यपालन में विशेष निष्ठा से प्रवृत्त हों।

ऊर्ध्वरेता प्राणायाम

ऊर्ध्वरेता बनने की विधि से पूर्व वीर्य के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। वीर्य प्राणिमात्र का जीवनतत्त्व है। इस वीर्यरूपी बीज के बिना संसार के किसी भी पदार्थ की उत्पत्ति, रक्षा और जीवन नहीं रह सकता। इसको शास्त्रों में बीजत्व, वीरत्व ओजस्, बल, तेज, शुक्र, पवित्रता, रेतस्, कान्ति, बिन्दु, भर्ग आदि नामों से कहा है। उपर्युक्त सभी नाम मानवजीवन की दिव्य अलौकिक

शक्तियों के सूचक हैं। यह दिव्यशक्ति हमारे भोजन का सारतत्त्व है। इस वीर्य की ऊर्ध्व एवं अधः नाम से दो गतियां होती हैं। दूषित आहार विहार एवं कुसंस्कारों से जहां वीर्य अधोगति को प्राप्त होता है वहां प्रयत्नविशेष करने से वीर्य की ऊर्ध्वगति भी होजाती है।

ऊर्ध्वरेता होने की एक विशेष विद्या है। जिससे वीर्य की गति सदा के लिये ऊर्ध्व होजाती है। उसी विद्या की झलक व रूपरेखा आदर्श ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में मिलती है। अनेक वर्ष इसकी खोज तथा अनुभव मैं भी करता रहा हूं। इसका अनुभव मेरे अनेक ब्रह्मचर्यप्रेमी साथियों ने किया व कराया है। जिसने इसका अनुभव किया, उसी ने इसकी मुक्तकण्ठा से प्रशंसा की है। जो इसका दीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक और निरन्तर सेवन करेगा वह निश्चयपूर्वक ऊर्ध्वरेता होजायेगा। उसकी इच्छा के बिना वीर्य का एक बिन्दु भी उसके शरीर से बाहर नहीं निकल सकता। उस विधि का कुछ भाग ब्रह्मचर्यप्रेमियों के लाभार्थ नीचे देता हूं।

यह एक प्राणायाम की विधि है। इसके केवल पढ़नेमात्र से कार्य नहीं चलेगा। ब्रह्मचर्य के अन्य नियमों के पालन के साथ प्राणायाम का प्रतिदिन अभ्यास करना होगा। आजकल **"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद"** के अनुसार सन्तान का निर्माण नहीं होता। माता-पिता बालकों को उत्पन्न करने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठे हैं। ब्रह्मचर्यविहीन माता-पिता द्वारा उत्पन्न बालक दुर्बल, रोगी एवं अल्पायु होते हैं। बीज में ही दोष होने के कारण प्रायः बालकों की प्रवृत्ति संयम, चरित्र, ब्रह्मचर्यपालन की ओर न होकर स्वभाव से विषय-वासना की ओर होती है। तथा दुर्भाग्य से उन्हें चरित्र-पूर्ण गुरुकुल का वातावरण उपलब्ध न होकर शिक्षा के नाम पर सह-शिक्षा की तीव्र भट्ठी से गुजरना पड़ता है। जिसके परिणामस्वरुप १५, १६ वर्ष की आयु में पहुंचते-पहुंचते प्रत्येक बालक का शरीर कामाग्नि से जलने लगता है, शरीर के अन्दर जमा हुआ वीर्य पिंघलने लगता है। जैसे शीत में जमा हुआ घृत अग्नि पर रखने से पिंघलकर पतला होजाता है तथा छिद्रयुक्त पात्र से बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार छोटे-छोटे बालकों में भी दुष्टविचारों एवं कुचेष्टाओं के कारण वीर्य पतला होकर बहने लगता है और नाभि के नीचे मूत्राशय के समीप जो वीर्य का कोष (खजाना) है उसमें ठहरने लगता है और वीर्य से वीर्यकोष भर जाता है। यह वीर्य फिर लौटकर

ऊपर नहीं जाता और स्वपनदोषादि के द्वारा बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार वीर्य का कोष बार-बार भरता और खाली होता रहता है। यह वीर्य जो शरीर का राजा है, जिसे शरीर का अंग बनाना था, जो २५ वर्ष की आयु से पहले कभी भी वा आयुभर शरीर से बाहर नहीं निकल सकता था तथा जो ऊर्ध्वगति होकर शरीर और मस्तिष्क की शक्ति का रूप धारण करता, आज इच्छा के विरुद्ध और शरीर का सार अमृतरूपी वीर्य मूत्र के समान बुरी तरह टपक-टपक कर निकल रहा है, ऐसी अवस्था में बालक और युवक धाड़ मारकर रोते और चिल्लाते हैं।

उनके आंसू पूंछने के लिए यह ऊर्ध्वरेता होने का गुप्तरहस्य कर्त्तव्यभावना से लिख रहा हूं। इससे शुक्राशय (वीर्य के खजाने) में पड़ा हुआ वीर्य फिर ऊपर को जाने लगेगा जैसे दीपक का तेल जाता है। यह ऋषियों की गुप्तविद्या है जो आज लाखों रुपये खर्च करने पर भी नहीं मिलती। ब्रह्मचर्य के दीवाने इसकी रक्षा करने में रात-दिन एक कर देते हैं, भयंकर से भयंकर पर्वतों गुफाओं और कन्दराओं को छान मारते हैं तब जाकर इसका भेद मिलता है। इसलिए इसको पढ़कर व्यर्थ न समझ लेना, इसका श्रद्धापूर्वक अभ्यास करो। इससे स्वप्रदोषादि रोगों से अवश्य ही पिंड छूट जायेगा और वीर्य-रक्षा में सफल होजाओगे। विधि इस प्रकार है—

पहले सिद्धासन में बैठजाओ। जिसकी विधि तीसरे अध्याय में लिखी जा चुकी है। यदि केवलमात्र इस सिद्धासन का ही अभ्यास किया जाये तो यह भी वीर्यरक्षा तथा स्वप्रदोष को दूर करने में अत्यन्त हितकर है। उसके पश्चात् बाह्यविषय या बाह्यकुम्भक प्राणायाम करें। जिसकी विधि का उल्लेख हम चतुर्थ अध्याय में कर चुके हैं। ऊर्ध्वरेता बनने के लिये इस प्राणायाम के आदि से अन्त तक एक विशेष क्रिया का ध्यान रखना तथा अभ्यास करना है।

श्वास निकालने से पूर्व जो नाभि के नीचे मूलाधार को खींचा था उसे निरन्तर खींचे ही रखना है, ढीला नहीं छोड़ना। जितने समय तक अथवा जितने भी प्राणायाम करें मूलाधार जो खींचे ही रखें। पहले-पहले कुछ कठिनाई प्रतीत होगी किन्तु कुछ दिनों के अभ्यास से सरलता से कर सकेंगे। फिर मूलाधार को खींचने से गुदा खिंची रहेगी और वीर्यकोष जहां ठहरता है वह भी ऊपर को खिंचा रहेगा। मूलाधार खींचते समय नाभि से नीचे ध्यान करें कि हम वीर्य को ऊपर की ओर खींच रहे हैं। कुछ समय के अभ्यास के बाद वीर्य ऊपर को यथार्थ में खिंचने तथा जाने लगेगा और आगे चलकर आप पूर्णरूपेण ऊर्ध्वरेता बन जावेंगे। वीर्य ऊपर को घटने लगेगा। वीर्यकोष में वीर्य आना ही बन्द होजावेगा। फिर आपकी इच्छा

के बिना एक बिन्दु भी बाहर नहीं निकल सकता। स्वप्रदोष, प्रमेह आदि रोग तो हो ही कैसे सकते हैं। ऐसी अवस्था भी आवेगी कि कभी स्वप्रदोष होने का अवसर आवेगा तो अर्धनिद्रा में आप मूलाधार को खींच लेंगे। आखें खुल जावेंगी। स्वप्रदोष से बच जावेंगे। आप की विजय होगी। आपकी विजय और हार आपके अभ्यास के ऊपर है। एक वर्ष तक इस बाह्य (रेचक) प्राणायाम का अभ्यास करें और इसी क्रम से तृतीय स्तम्भवृत्ति तथा चतुर्थ बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी प्राणायाम करें। सब प्राणायामों का अभ्यास करने पर आप निश्चितरूप से ऊर्ध्वरता होजावेंगे। इस प्राणायाम की जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। सब ऋषियों और विशेषतया पूज्यपाद महर्षि दयानन्द की कृपा है जो ऐसी विद्या इस गिरे हुए संसार को मिली है। इस प्राणायाम के प्रभाव से जहां स्वप्रदोषादि रोग दूर होंगे वहां शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल पराक्रम और जितेन्द्रियता की प्राप्ति होगी। इसका अभ्यास सब युवकों विद्यार्थियों तथा ब्रह्मचर्यप्रेमी स्त्री पुरुषों को करना चाहिये। यह वीर्यरक्षा का सर्वोत्तम साधन और परम औषध है। इसके अतिरिक्त पद्मासन, सिद्धासन, सर्वांगासन, ऊर्ध्वपद्मासन, हलासन, शीर्षासन, योगमुद्रा आदि आसन तथा उज्जायी, भस्त्रिका आदि प्राणायाम भी अतिहितकारी होते हैं। यदि वीर्यविकार के कारण शरीर में जलन होती हो तो भस्त्रिका के स्थान पर शीतली प्राणायाम करना लाभदायक है। विचार शुद्ध रखें, लालमिर्च, गुड़, शक्कर, प्याज , लहसुन आदि उत्तेजकपदार्थों का सेवन न करें। प्राणायाम में विशेष सफलता चाहने के इच्छुक नमक का सेवन भी छोड़दें।

मलबद्धतानाशक प्राणायाम

भोजन में अतिजलपान करने से, नितान्त शुष्क भोजन करने से, अतिपरिश्रम करने से, विष्टम्भी एवं गरिष्ठ भोजन करने से, शौच आदि के वेग को रोकने से तथा अन्य भोजन के नियमों का पालन न करने से उदरस्थ वायु कुपित होकर उदर में मल को सुखा देता है। जिसके कारण से शौच (पुरीष) नहीं निकलता अथवा बहुत देर प्रतीक्षा करने पर थोड़ा सूखा मल निकलता है। इसी को बुद्धिमान् कब्ज वा मलबद्धता कहते हैं। हमारी आंतों के भीतर छोटे-छोटे ग्राहक अंकुर लगे रहते हैं जिनका कार्य भोजन से रस खींचकर यकृत् में भेजना है। वहां जाकर यह रस रंजकपित्त से रंगा जाकर रक्त के रूप में परिवर्तित होजाता है। जब ये ग्राहक अंकुर भोजन से रस ग्रहण करलेते हैं तो अपानवायु द्वारा मलभाग मलाशय में चला जाता

है और वहां से गुदामार्ग द्वारा बाहर निकल जाता है। जिस मनुष्य को मलबद्धरोग होता है उसकी आंतें मल को नहीं छोड़ती हैं, मल उन्हीं में चिपका रहता है, ग्राहक अंकुर अपना कार्य करते रहते हैं जिससे दूषित एवं दुर्गन्धित रस भी चूसकर यकृत् में भेज दिया जाता है। पुनः आगे की रक्त आदि सब धातुयें दूषित होजाती हैं। मनुष्य नितान्त, निस्तेज, उत्साहहीन, दुर्बल बन जाता है, वास्तविक क्षुधा बन्द होजाती है। भोजन से पूर्व कुछ क्षुधा प्रतीत होती है किन्तु भोजन में रुचि एवं स्वाद नहीं रहता। आयुर्वेद के अनुसार कब्ज अनेक रोगों की जननी है। आज भारत में करोड़ों मनुष्य इस रोग से पीड़ित हैं, अरबों रुपया कब्जनाशक औषधियों पर व्यय होता है। कब्ज का रोगी ब्रह्मचर्यपालन में तो सफल हो ही नहीं सकता। वैसे तो प्रत्येक प्राणायाम कब्ज को समूल नष्ट करने का सामर्थ्य रखता है। किन्तु कब्ज ही को दूर करने के लिए यहां एक विशेष प्राणायाम लिखते हैं। विधि इस प्रकार है—

सुखपूर्वक स्वस्तिक आदि किसी भी आसन से बैठकर दोनों हाथों को घुटनों पर जमाकर रखें। सर्वप्रथम पूरक प्राणायाम करें तथा वायु छाती में भरकर उदर में लेजावें। उदर को वायु से अधिकाधिक फुलादें, फिर रेचक करें। रेचक करने पर पेट को बिल्कुल सिकोड़कर पीठ के साथ मिलादें। मूलबन्ध एवं उड्डियानबन्ध ठीक प्रकार लगे हों, उसके बाद पुनः पूरक करें और उदर वायु से फुलादें तथा इसी प्रकार पुनः रेचक करके मूलाधार संकोच करें। इस प्राणायाम को २५ से १०० बार तक किया जासकता है। इसके अभ्यास से कुछ ही दिनों में आंतों में शक्ति आजाने से पुरानी से पुरानी कब्ज भी दूर होजावेगी। इसके अतिरिक्त कब्ज को दूर करने के लिये उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, पश्चिमोत्तानासन, पादांगुष्ठासन, धनुरासन, हलासन, सर्वांगासन, न्यौली, शीर्षासन आदि आसनों का अभ्यास भी अति लाभप्रद होता है।

प्रतिश्यायनाशक प्राणायाम

मल मूत्रादि के वेग रोकने से, अजीर्ण (अपचन)होने से, अधिक बोलने से, क्रोध से, ऋतुओं की विपरीतता से, सिर पर धूप आदि की गर्मी से, अधिक जागने से, अधिक सोने से, वर्षा में भीगने से, शीत लगने से, ओस में सोने या घूमने से, ब्रह्मचर्यनाश से, भाप, धूआं एवं धूलादि से संचित कफ दूषित होकर प्रतिश्याय (जुकाम) को पैदा कर देता है। जिससे मनुष्य को छींकें आना, सिर भारीसा ज्ञात

होना, शरीर में जकड़न, अंगों का दुखना, रोमाञ्च होना, नाक से पानी आना अथवा नितान्त रुक जाना आदि लक्षण प्रकट होजाते हैं। यह रोग उदरविकार से सम्बन्ध रखता है। जब मनुष्य का प्रथम धातु रस दूषित श्लेष्मा (कफ) का रूप धारण कर लेता है तो सिर में जाकर स्नायुओं का अवरोध कर लेता है, इसका नाम जुकाम है। इसके अतिरिक्त मुंह ढककर खिड़की, द्वार बन्द करके सोने से, अशुद्ध वायु के फेफड़ों में पहुंचने से भी जुकाम होजाता है। प्राणायाम के अभ्यासी को प्रथम तो जुकाम होता ही नहीं और यदि कभी प्रमादवश होजावे तो अतिशीघ्र समाप्त होजाता है। इस रोग में भस्त्रिका प्राणायाम परम औषध है। एक शुद्ध वस्त्र से नाक साफ करते जावें। प्राणायाम की उष्णता से सम्पूर्ण संचित कफ पिंघलकर बाहर निकल जावेगा, उदर अग्नि प्रदीप्त होने से कफ बनना बन्द होकर रक्त बनने लगेगा। इस प्रकार एक दिन में ही जुकाम समाप्त होजावेगा। जुकाम के अन्दर भोजन विष तुल्य होता है। अतः उपवास, जलनेति, उत्तानपादासन, पश्चिमोत्तानासन, हस्तापादांगुष्ठासन, पवनमुक्तासन विशेष लाभदायक सिद्ध होते हैं।

सिरदर्दनाशक प्राणायाम

सिर दर्द अतिकष्टदायक रोग है। इसकी उत्पत्ति के दो मुख्य कारण हैं। प्रथम उदर का विकृत होना, जब उदर में भोजन का परिपाक ठीक प्रकार नहीं होता तो वह दूषित हुआ रस कफ (नजला) रूप में परिवर्तित होकर वायु द्वारा प्रेरित किया हुआ सिर में जाकर सूक्ष्म नसनाड़ियों का अवरोध कर देता है जिसके कारण सिर भारी, आंखों में पानी आना, अतिपीड़ा होना आदि लक्षण पैदा होजाते हैं। सिरदर्द का दूसरा कारण अतिश्रम, चिन्ता, क्रोध, ब्रह्मचर्यनाश, अतिजागरण आदि विपरीत आचरण होते हैं। अतिश्रमादि से वात कुपित होकर सिर में अतिपीड़ा पैदा कर देता है। शिरदर्द की चिकित्सा के लिये सर्वप्रथम रोग के कारण को दूर करना चाहिये। यदि उदरविकार से सिर दर्द हो तो जुकाम की चिकित्सा में लिखे आसन एवं प्राणायाम करने चाहियें तथा अतिश्रम आदि से होने पर जलनेति, प्रातः नासिका से जलपान एवं शीतली प्राणायाम लाभदायक है।

श्वास (दमा)

श्वास वा दमा उदर की विकृति से ही होता है। जब किया हुआ भोजन ठीक प्रकार से नहीं पचता तो उदर की उष्णता से ऊपर उठता है, जो कि श्वासप्रणाली

में संचित होकर श्वासमार्ग को रोक देता है जिसके कारण हृदय में पीड़ा, उदर में शूल, पेट का फूलना, मुख का फीकापन आदि लक्षण प्रकट होते हैं, आयुर्वेद में इसे महाव्याधि माना है। यह अतिभंयकर रोग है। इस रोग में रेचक-पूरक एवं समवृत्तिप्राणायाम विशेष लाभप्रद हैं। प्राणायाम करते समय अधिक शक्ति न लगाकर थोड़ा-थोड़ा निरन्तर अभ्यास करना चाहिये। इस रोग के लिये प्राणायाम ही सर्वश्रेष्ठ औषधि है। वैद्य डाक्टर आदि भी जब रोगी को अन्तिम अवस्था में देखते हैं तथा सभी औषधियां व्यर्थ होजाती हैं तो गहरे एवं लम्बे श्वास लेने का ही परामर्श देते हैं जो कि एक प्रकार से प्राणायाम ही है। उदर को ठीक करने के लिये जो आसन हम पूर्व लिख चुके हैं वे इस रोग में भी लाभप्रद हैं।

निद्रा न आने की चिकित्सा

पेट की कब्जी के कारण, ज्वरादि रोगों से, अधिक मानसिक श्रम चिन्ता से, चाय आदि नशीली चीजों से मनुष्य को निद्रा नहीं आती। जिसके कारण शिर भारी होजाता है, शिरदर्द, चक्कर आना, अंगों का टूटना, आंखों में जलन, आलस्य आदि विकार उपस्थित होजाते हैं। अनिद्रा दूर करने के लिये उदर की शुद्धि आवश्यक है। उदर को ठीक करनेवाले आसन उपयोगी हैं। सोते समय पूरक और रेचक करके सारे शरीर को शिथिल करदें। मन को भृकुटि के मध्य स्थिर कर अन्धकार में विलीन करदें। इस प्रकार यह रोग दूर होसकेगा।

इसके अतिरिक्त क्षय (तपेदिक), खांसी, अतिसार (दस्त), मूर्च्छा, रक्तविकार, वातविकार, नेत्रों की दुर्बलता, अजीर्ण, पेटदर्द, अर्श (बवासीर), अपस्मार (मिर्गी), उन्माद (पागलपन), कफरोग, कण्ठरोग आदि की चिकित्सा प्राणायाम एवं आसनों के द्वारा सफलतापूर्वक की जासकती है जिसे बुद्धिमान् साधक प्राणायाम के तत्त्व को समझकर स्वयं करने में समर्थ हो सकते हैं।

इति पंचमोऽध्यायः।

षष्ठ अध्याय

प्राणायामपूर्वक व्यायाम

वैसे तो प्राणायाम स्वयं ही पूर्ण व्यायाम है। इससे शरीर के प्रत्येक अवयव का श्रम होजाता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रत्येक व्यायाम के साथ भी प्राणायाम का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राणायाम के अभाव में व्यायाम अपूर्ण ही नहीं अपितु हानिप्रद भी होता है। इसी कारण व्यायाम के प्रसिद्ध आचार्य प्रो० राममूर्ति इस विषय में लिखते हैं—''व्यायाम प्राणायाम के साथ करो, अर्थात् श्वास मुख से न लेकर नाक से लो और पूरक; कुम्भक रेचक करते हुये करो।''

लोग यह समझते हैं कि प्राणायाम तो योग का ही एक अंग है। इसका व्यायाम के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इसी भूल के कारण लोगों को व्यायाम से पूर्ण लाभ नहीं होता। प्राणायाम व्यायाम का प्राण है और इसका हमारे शरीर के साथ सीधा सम्बन्ध है। यह समझ लेना आवश्यक है। इसलिए थोड़ा खोलकर लिखा जाता है।

जब कोई व्यायाम आरम्भ करता है, तो उसके पुट्ठों वा मांसपेशियों में पीड़ा होजाती है। इसका अधिक अनुभव उस व्यक्ति को होता है, जो प्रतिदिन व्यायाम नहीं करता। किन्तु एक दिन देखा-देखी या किसी के उत्साहित करने पर सौ-पचास बैठकें इकट्ठी ही लगा डालता है अथवा एकाध मील की दौड़ लगा लेता है। इससे उसकी रानें और पिंडलियां अकड़ जाती हैं और भरी-भरी प्रतीत होती हैं। उठने-बैठनें में बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि जिन पुट्ठों से कभी कार्य नहीं लिया गया, ऐसे सुख (आराम) में रहनेवाले पुट्ठों के छोटे-छोटे भाग (रेशे) व्यायाम करने से टूट जाते हैं और यह टूटकर शरीर में इकट्ठे होजाते हैं और इनसे सूजन उत्पन्न होकर कष्ट होता है। किन्तु प्रतिदिन व्यायाम वा परिश्रम के अभ्यास से वे ही भाग (रेशे) सुदृढ़ होजाते हैं और टूटते नहीं अथवा बहुत कम टूटते हैं। क्योंकि हमारे रक्त में जो प्राणवायु है, वह इन टूटे हुए भागों (रेशों) की जीवनशक्ति (आक्सीजन) श्वास द्वारा बाहर के शुद्ध वायु से हमारे अन्दर आती रहती है और प्रश्वास द्वारा टूटे हुए व्यर्थभागों (रेशों) वा रक्त के मल आदि से मिलकर बना हुआ विषैला वायु (कार्बन) बाहर निकल जाता है और श्वास-प्रश्वासों की गति बढ़ जाती है। क्योंकि साधारण अवस्था में टूट-फूट कम होती है। इसलिए साधारण श्वास-प्रश्वास से कार्य चल जाता है। किन्तु व्यायाम करने से जब टूट-फूट अधिक बढ़ जाती है, तब इसको ठीक करने के लिए अधिक प्राणवायु

चाहिए और अधिक प्राणवायु के लिए अधिक श्वास और प्रश्वास की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ़ जाते हैं। जब व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ़ जाते हैं और प्राणवायु हमारे फेफड़ों में जाता है और रक्त के साथ मिलकर शरीर के कोने-कोने में व्याप्त होजाता है, तो उस समय यह शरीर की उष्णता को पसीने के द्वारा बाहर निकालता है। इसलिए व्यायाम करने से हमेशा पसीना आता है। जिस समय हम कोई कठोर व्यायाम करते हैं, तब श्वास प्रश्वास की गति बढ़ जाती है। कार्बन के ओषजन के साथ मिलने से जो रासायनिक क्रिया होती है, उससे शरीर की उष्णता भी बढ़ जाती है। यदि प्राण और अपान की टक्कर वा संघर्ष से उत्पन्न हुई उष्णता को कम कर दिया जाए तो ज्वर होजाए। क्योंकि शरीर की उष्णता बढ़ जाने का ही नाम ज्वर है। इस अधिक बढ़ी हुई उष्णता को हमारा प्राणवायु श्वास-प्रश्वास तथा पसीने के द्वारा हमारे शरीर से बाहर निकाल फैंकता है। उष्णकाल में हम जल को ठण्डा रखने के लिए उसे मिट्टी के घड़े में भर देते हैं। ऐसा करने से घड़े के बाह्यभाग पर जो जल आजाता है, वह उष्णवायु के साथ छूकर वाष्प बनजाता है। वाष्प बनाने के लिए जिस उष्णता की आवश्यकता होती है, उसको घड़े के जल से लेलेता है। इसी प्रकार जब व्यायामादि के कारण हमारे शरीर में उष्णता बढ़ती है, तब घड़े के समान हमारा शरीर भी पसीजने लगता है और पसीने के द्वारा शरीर में बढ़ी हुई उष्णता बाहर निकल जाती है और पसीने के साथ ही अनेक प्रकार के विजातीय मल (विष) जो अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति के कारण हैं, सहज में ही शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

इसलिए वेद भगवान् ने भी व्यायाम को परम आरोग्य का मुख्य साधन माना है—

विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे।।

(अथर्व० कां ७२, सू० ४. मं० ४)

निर्बल करनेवाले शोषकरोगों को और सब राक्षसों अर्थात् सब रोगकृमियों को हम व्यायाम के द्वारा दबाते हैं वा नष्ट करते हैं।

पाठक! इतना लिखने से समझ गये होंगे कि श्रम (थकान) को दूर करने के लिए, टूटे हुए पुट्ठों को जोड़ने के लिए अथवा उनमें नवजीवन लाने के लिए और व्यायाम से उत्पन्न हुए विष को दूर करने के लिए प्राणवायु को प्रविष्ट करना

चाहिये। प्राणवायु का अधिक प्रवेश शीघ्र-शीघ्र श्वास लेकर अथवा गहरे श्वास लेकर ही किया-जासकता है। जिस प्रकार नदी का मार्ग भीड़ा (तंग) होने से उसकी धार वा गति का वेग बढ़ जाता है। उसी प्रकार हमें भी व्यायाम के समय शीघ्र श्वास लेना पड़ता है और हमारा श्वास फूल जाता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा श्वास न फूले, तो हमें गहरे श्वास लेने का स्वभाव डालना चाहिए। गहरा श्वास सारे फेफड़ों में जाता है। प्रायः लोगों को श्वास लेना नहीं आता। उनका थोड़ासा श्वास थोड़ेसे फेफड़ों में जाकर उलटा चला आता है। गहरे श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिये जिससे हमारे फेफड़े स्वस्थ और लचकीले होजायें। व्यायाम में गहरे श्वासों का नाम ही प्राणायाम है। गहरा श्वास लेने के समय हमें मन की शक्ति के द्वारा फेफड़ों के प्रत्येक भाग में वायु पंहुचाने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यायाम के समय हमारी नासिका के दोनों छिद्र शुद्ध और खुले हुए होने चाहियें। आसन, दण्ड, बैठक कोई भी व्यायाम आप करें सदैव प्राणायाम के साथ करें। यही हमारी प्राचीन शैली है। प्राणायाम वा गहरे श्वास लेने के महत्त्व को अब योरोप आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी समझने लगे हैं और यही प्राणायाम की विधि (Deep breathing) के नाम से प्रसिद्ध है।

इंगलिस्तान के डाक्टर ऊस्टेस माइल्ज अपनी पुस्तक में श्वास लेने की विधि के विषय में लिखते हैं—

''पूर्ण श्वास लेने की विधि प्राचीन आर्यग्रन्थों में लिखी है। श्वास सावधानी से लो अर्थात् यदि तुम प्राकृतिकरूप से भलीभांति श्वास लेना नहीं जानते तो अभ्यास करो। श्वास गहरा लेना चाहिए कि सम्पूर्ण फुफ्फुस भरजावें और फिर सम्पूर्ण श्वास बाहर भी निकालना चाहिए। उत्तमरूप से श्वास लेने का अभ्यास बहुत गुणकारी है और एक ऐसी कला है जिसे मनुष्य को प्रतिक्षण पूर्ण करते रहना हैं, बुढ़ापे में जाकर इसे छोड़ा नहीं जासकता। वह इसे मरते दम तक पूरा करता है और लाभ उठा सकता है। सहस्रों मनुष्य ऐसे हैं जो श्वास लेने की ठीक विधि को नहीं जानते। उत्तम प्रकार से एक दो वर्ष श्वास लेने का अनुभव करलो, फिर तुम्हें स्वयं ज्ञात होजायेगा कि फुफ्फुस की वायु की मात्रा दुगुनी होगई है।''

वे आगे लिखते हैं—''उत्तमविधि से श्वास लेना शारीरिक स्वास्थ्य और स्वास्थ्यरक्षा के नियमों के लिए है। इससे स्वास्थ्य बढ़ता है, उत्तमरूप से श्वास लेने से रूप-रंग ठीक होजाता है और मनुष्य का जीवन सुख-भोगने के योग्य हो

जाता है और हार्दिक वा मानसिक विचार उत्तम होजाते हैं। उत्तमरूप से श्वास लेने से धन और शक्ति व्यर्थ नष्ट नहीं होपाती। इससे मनुष्य अपने शरीर और मन को वश में कर सकता है।''

वैसे तो कोई भी व्यायाम करें फुफ्फुस का व्यायाम भी साथ ही होता जाता है। क्योंकि सभी व्यायामों में श्वास शीघ्र-शीघ्र आता जाता है, इससे फुफ्फुस खूब बढ़ते और सिकुड़ते हैं। अच्छे से अच्छा वायु रक्त को शुद्ध करता है। रक्त का भ्रमण बढ़ता है और शरीर का मल (मवाद) बाहर निकलता है। कुछ मल तो स्वेद द्वारा निकल जाता है, कुछ व्यायाम की उष्णता से जल जाता है, कुछ रक्त के साथ मिलकर फुफ्फुस में आकर शुद्ध होजाता है, कुछ श्वासमार्ग से बाहर निकल जाता है, कुछ मल मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है। ये सब लाभ व्यायाम से होते हैं। किन्तु प्राणायाम वा गहरे श्वासों के अभ्यास के द्वारा रक्त और शरीर की शुद्धि और फुफ्फुस का व्यायाम अन्य सभी व्यायामों की अपेक्षा सैकड़ों गुना लाभदायक होता है। इसलिए अन्य धार्मिक नित्यकर्मों के साथ दैनिक प्राणायाम करने की आज्ञा प्राचीनशास्त्रों ने दी है। गहरे श्वासों के अभ्यास का नाम ही प्राणायाम है यह पहले ही बताया जा चुका है। अत: सदैव गहरे श्वास लेवें।

गहरे श्वास लेने की विधि का अभ्यास

किसी ऐसे शान्त और एकान्त स्थान में जहां का वायु शुद्ध और शीतल हो, जिसमें धूल या धुआं आदि हानिकारक वस्तुएं न मिली हुई हों, सिद्धासन वा किसी आसन में जिसमें आप सुखपूर्वक बैठ सकते हों, इस प्रकार बैठ जायें कि आपकी छाती, ग्रीवा (गला) और सिर तीनों एक सीध में रहें, मेरुदण्ड (रीढ की हड्डी) भी सीध में रहना चाहिये। धीरे-धीरे नासिका द्वारा श्वास को बाहर निकालें, जब तक छाती, आमाशय (पेट) रिक्त न होजायें, श्वास को निरन्तर निकालते रहें अर्थात् सारा वायु निकाल देना चाहिये। इस श्वास के बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं। फिर इसी प्रकार धीरे-धीरे श्वास को भीतर लें और जब तक छाती और आमाशय भलीभान्ति न भरजाएं लेते ही रहे; इस श्वास के भरने की क्रिया को पूरक कहते हैं। इस प्रकार आरम्भ-आरम्भ में रेचक और पूरक का अनेक बार अभ्यास करें। जब एक दो मास के अभ्यास के पश्चात् श्वास का निकालना और भरना भलीभांति आजावे तभी बाहर वा अन्दर श्वास के रोकने का अभ्यास करना चाहिए।

श्वास के बाहर वा अन्दर रोकने के अभ्यास का नाम ही कुम्भक है। यदि किसी की इच्छा आरम्भ में ही श्वास के रोकने की हो तो थोड़ी देर रोकना चाहिए। रोकने का समय धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए; बलपूर्वक रोकने से हानि होती है। अभ्यास से बाहर और भीतर दोनों ओर श्वास के रोकने की अवधि वा कुम्भक का समय स्वयमेव बढ़ जाता है। रेचक वा पूरक का अभ्यास सीधे खड़े होकर, लेटकर, चलते हुए अथवा पश्चिमोत्तानासन में भी किया जासकता है। व्यायाम करने से पहले एक दो बार भस्त्रिका प्राणायाम करने से बड़ा लाभ होता है, जिसकी विधि हम पहले चतुर्थाध्याय में लिख चुके हैं। इस प्रकार भस्त्रिका तथा गहरे श्वासों का किया गया यह अभ्यास फेफड़ों को स्वस्थ और लचकीला बना देता है। लचकीले फेफड़ों में श्वास वा प्राण की मात्रा अधिक आती है। जब हम एक बार में अधिक प्राण अन्दर भरलेंगे तो शीघ्र ही दूसरा श्वास लेने की आवश्यकता न होगी। इसी को गहरा वा उत्तम श्वास कहते हैं।

प्राणायामपूर्वक व्यायाम करने का विशद वर्णन ब्रह्मचर्य के साधन चतुर्थ भाग में किया गया है। प्रो० राममूर्ति के दण्ड, सपाट बैठक आदि का सचित्र वर्णन वहां कर चुके हैं। दण्ड बैठक, कबड्डी, आसन आदि सब प्रकार के व्यायाम रेचक, पूरक, कुम्भक पूर्वक करने चाहियें। इस प्रकार व्यायाम करने से अत्यधिक सफलता मिलेगी, जहां शरीर परिपुष्ट, सुन्दर, तेजस्वी बनेगा वहां बुद्धि, मन, मस्तिष्क, अन्तःकरण इन्द्रियां आदि सभी आन्तरिक अवयव भी शुद्ध-पवित्र एवं परिपुष्ट बन जावेंगे, जिससे पूर्ण आदर्श ब्रह्मचारी बनने में सफलता मिलेगी। अतः सभी को प्राणायामपूर्वक ही व्यायाम करना उचित है।

इति षष्ठोऽध्यायः।

षष्ठ भाग समाप्त।